# विषय–सूची


| क्रमाङ्क | | पृष्ठ |
| --- | --- | --- |
| १. | मानव कल्याण परिषद् क्या है ? | १ |
| २. | मानवता और हमारा कर्त्तव्य ! | ६ |
| ३. | मानवता का आधार क्या है ? | १३ |
| ४. | मानव जीवन और उसका निर्माण ! | २२ |
| ५. | मानवता के तीन महा शत्रु ! | ३८ |
| ६. | एक अटल धारणा ! | ५१ |
| ७. | क्या क्षात्र-बल निरर्थक है ? | ५७ |
| ८. | मानव सैनिक ही क्यों ? | ५९ |
| ९. | पार्टी और वर्त्तमान राजनीति में भाग क्यों नहीं? | ६३ |
| १०. | क्या यह संगठन भी कोई एक पार्टी है ? | ७२ |
| ११. | यह महान कार्य कैसे हो सकेगा ? | ७६ |
| १२. | विश्व के महापुरुष और उनका मान ! | ८२ |
| १३. | किस से प्रेम हो ? | ८७ |
| १४. | आदर्श कार्य-कर्त्ता कौन ? | ९१ |
| १५. | भक्ति, शक्ति, ज्ञान और कर्म में से किसे प्रधान मानें ? | ९६ |
| १६. | उद्‌बोधन ! | ९७ |
| १७. | परिषद् की विशाल योजना ! | १०९ |
| १८. | परिषद् के मौलिक कार्य ! | ११२ |
| १९. | परिषद् की विशेषता ! | ११३ |
| २०. | कार्य में सफलता के सूत्र ! | ११६ |
| २१. | कार्य-सिद्धि में पांच कारण होते हैं ? | ११८ |
| २२. | परिषद् की सफलता के आधार ? | ११९ |
| २३. | व्यक्ति-गत-शक्ति और सफलता ! | १२० |
| २४. | यह आचार-प्रधान संगठन है ? | १२१ |
| २५. | हमारी समाज-निर्माण-योजना ! | १२२ |
| २६. | एक तत्व की बात ! | १२४ |
| २७. | अन्तिम निवेदन ! | १२७ |

मनुर्भव !

# मानव – कल्याण परिषद्
# की
# विचार धारा

## मानव–कल्याण परिषद् क्या है ?

जन साधारण की जिज्ञासा-अनुसार परिषद् के नाम से ही स्पष्ट है कि 'मानव-कल्याण परिषद्' क्या है ? अर्थात् इसका उद्देश्य और कार्य क्या है ? पुनरपि कुछ विशद् रूप से स्पष्ट किया जाता है कि आस्तिक भावों को जागृत करते हुए, सत्य और न्याय के आधार पर संसार में मानवता का क्रियात्मक रूप से विशुद्ध वातावरण उत्पन्न करना ही परिषद् का ध्येय है। जो स्वत: एक महान कार्य है।

अत: मानवता-सम्बन्धित जिस कार्य-क्रम को स्वयं सिद्धान्तत: स्वीकार करते हैं, तदर्थ जन-कल्याण जैसे सर्व-सेवा कार्यों में अनुशासित रूप से कर्त्तव्य हेतु यथा-समय एवं यथा-शक्ति भाग अवश्य लेना है। अर्थात् मानव मात्र की समानता-एकता और सेवा में पूर्ण आस्था एवं विश्वास रखते हुए, देश-काल व अवस्था-नुसार जो भी कर्त्तव्य होगा, तदनुसार सर्व-सेवा कार्यार्थ नि:संकोच रूप से सर्वथा तत्पर रहना है।

इस प्रकार निष्काम भाव से करने योग्य सेवा-कार्यों के लिए स्वयं कार्य-कर्त्ताओं को भी निजी जीवन की विशेष तैयारी करनी है, ताकि वह सर्व-सेवा कार्यों में सर्वथा समर्थ एवं सर्वत्र सफल हो सकें।

इसके लिए प्रत्येक को स्वयं जीवन-संयम और अनुशासन से पूर्ण अभ्यस्त होना है। क्योंकि जो व्यक्ति स्वयं अनुशासित-जीवन नहीं है वह किसी संस्था विशेष के अन्तर्गत अनुशासित रूप से सेवा कार्य को महत्व नहीं देता। वह समझ ही नहीं सकता कि जन सेवा कार्य कितना और क्या महत्त्व रखता है? अतः प्रत्येक कार्यकर्त्ता को इस महत्त्वशाली कार्य के लिए अपने दैनिक कृत्यों में पूर्व स्वयं पूर्ण अनुशासित जीवन बनना है।

यह एक कटु सत्य है कि त्याग और तप के बिना सेवा का कोई महत्व ही नहीं। इसलिए सर्व-सेवा कार्यों के लिए पूर्व अहं और स्वार्थ का पूर्णतया त्याग करना होता है। पुनः ऐसे त्यागी और तपस्वी जीवन में मानवता का स्रोत स्वयं बह उठता है, जिस से वह एक आदर्श और सच्चा सेवक सिद्ध होता है। इस प्रकार प्रत्येक को सेवा-क्षेत्र के लिए पूर्ण तैयारी करनी है। क्योंकि बिना साधना के सिद्धि नहीं—यह निश्चित है। फिर जीवन से ही स्वतः जीवन-ज्योत जगेगी।

अनेक व्यक्ति मानवता को दुर्बल समझते हैं, यह एक महान भूल है। परन्तु हम मानवता को जीवन ध्येय की पूर्त्ति हेतु एक अमोघ अस्त्र मानते हैं। पुनः इसके साथ जीवन में आध्यात्मिकता का पुट देकर हम अद्‌भुत और महान कार्यों में समर्थ और सफल हो सकते हैं। यह हमारा अटल विश्वास है।

इस लिए हमारे कार्य-कर्त्ता मानवता को सर्वथा शिरोधार्य समझ कर उसी की पूर्त्ति-हेतु जीवन को आहुति समझते हैं। क्यों

कि वह भली भान्ति समझ चुके हैं कि मानव समाज के प्रति स्वयं प्रभु ने मानव-जीवन कर्त्तव्य-पूर्त्ति के लिए ही दिया है। जो एक यथार्थ सत्य है। अतः इस महान कर्त्तव्य के अतिरिक्त मानव-जीवन का तनिक भी अन्य मूल्य नहीं समझते।

यह भी स्मरण रहे कि जो स्वयं जीवित नहीं रह सकता अर्थात् जीवन-रक्षा में स्वयं समर्थ नहीं है वह दूसरे के जीवन की कैसे और क्या रक्षा कर सकेगा ?

इसके लिए सर्व प्रथम हम जीवन-निर्माण अर्थात् शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक रूप से जीवन की पूर्ण तैयारी को विशेष महत्त्व देते हैं। क्यों कि समाज की वास्तविक सर्व-सेवा कार्यों एवं अन्यान्य रक्षा कार्यों में इन्हीं उपरोक्त तीनों का विशेष महत्त्व है। वास्तव में मानवता की सर्व-सेवा तो एक बहुत-सर्वतः सशक्त एवं सर्वसामर्थ्यवान निर्मित व्यक्ति का कार्य है। जो दुर्बल के लिए नहीं है। अपितु 'मानवता' स्वयं सभी दुर्बलों को एक महान शक्तिशाली एवं साक्षात् शक्ति के रूप में तयार करती है।

हमारा यह विश्वास है कि जगत् में सर्वत्र विभिन्न समय पर जो और जितने भी महापुरुष उत्पन्न हुए हैं वह स्वयं सभी मानवता के गुणों से ओत-प्रोत, अनन्य भक्त, पूर्ण समर्थक तथा प्रचारक और प्रसारक भी रहे हैं। इतना ही नहीं, उनके सम्मुख निष्पक्ष रूप से विश्व के जन-मानस के सर्व रूपेण कल्याण का निरन्तर कार्य-क्रम रहा है, जो आज अधूरा पड़ा है। जो कार्य आज के युग का एक सामयिक और अत्यावश्यकीय तथा सर्वथा अनिवार्य है। विशेषकर इस वर्त्तमान समय में, जब कि सर्वत्र प्रायः सभी ओर अशान्ति तथा अस्थिरता का वातावरण बना है।

ऐसे समय में उन गत महापुरुषों का जीवन सन्देश आज सर्व-हिताय एक विशेष प्रकाश स्तम्भ एवं प्रेरणा स्रोत बना है।

ज़िससे प्रेरित हो 'मानव-कल्याण-परिषद्' इस कार्य क्षेत्र में कटि-बद्ध एव स्वयं सर्वथा सन्नद्ध है।

यह ऐसा संगठन है जहां किसी प्रकार की संकीर्णता तथा परस्पर घृणा उत्पादक भावों को लेशमात्र के लिए भी स्थान नहीं देता। अपितु सर्वथा मानव-मात्र से हृदयेन प्रेम सत्य और मानवता के नाते व न्याय के आधार पर सवतः कर्तव्य का ध्यान रखते हुए मनुष्य मात्र को वास्तविक रूप में सर्व-सेवा (लोक सेवा) की शिक्षा एवं दीक्षा देता है।

अतः इसे मनुष्यमात्र के कल्याणार्थ एक सार्वजनिक या सार्वभौमिक आन्दोलन एवं वातावरण तथा इसकी वास्तविकता को देखकर मानव-निर्माण के साथ समस्त मानव-समाज निर्माण का ढांचा (सांचा) भी कह दिया जाय तो उचित जचेगा। क्योंकि आज के युग में इससे बढ़कर संसार में और महान कार्य हो भी क्या सकता है ?

यह कोई पार्टी नहीं है, अपितु एक महान विश्व मिशन है। जहां किसी वर्ग या वर्ण भेद का प्रश्न ही नहीं है। और न ही किसी देश-विदेश, भाषा व रंग एवं समुदाय विशेष का भेद ही काम करता है।

तत्त्व रूप में यह मानवता का एक मात्र निष्पक्ष और विशुद्ध रूप है। क्योंकि यह कार्य इतना महान विशाल और महत्त्वशाली है कि जो आज संसार की सब अशान्ति, परस्पर वैमनस्य, नाना-भांति के दुःख, संघर्ष, विषमता, भावी महाविनाशकारी महायुद्ध से विनाश से रक्षा का एकमात्र समाधान यही है। क्योंकि मानवता ही संसार में सर्व कल्याण के लिए सुख चैन और सर्वव्यापी स्थायी शान्ति का मूल है।

फिर आज के युग में सदियों से अपनी ही भूलों से भूले हुए मनुष्य-मात्र को मनुष्यत्व तथा पारस्परिक सम्बन्ध का ज्ञान करा कर उन में विशुद्ध भ्रातृत्व की भावना को क्रियात्मक रूप में लाना और इसी पवित्र एवं सर्वोत्कृष्ट भावना को स्थायी रूप देने के लिए एक प्रभु पुत्र होने की मूल भावना को जगाना है। ताकि मानवता के नाते सर्वत्र मानव समाज में स्थायी सुख और शान्ति का वातावरण उत्पन्न हो सके।

पुनः मनुष्यसे मनुष्य स्वयं परस्पर मिलकर अपने कल्याणमय सौभाग्य को जागृत कर सके। तभी मानव-कल्याण है। इस लिए यह कार्य कर्त्तव्य के नाते परस्पर मिलकर तत्काल करने योग्य सब का सांझा कार्य है।

इसी उद्देश्य की पूर्त्ति-हेतु इस संगठन में निष्पक्ष, विशुद्ध आचारवान, स्वयं श्रद्धामयी मानवता की पवित्र विचारधारा से ओतप्रोत, उदारमनः, सुयोग्य, विवेकशील, विद्वान्, विशेष अनुभवी एवं पथ प्रदर्शक व्यक्तियों को संगठित किया और निरन्तर किया जा रहा है।

अतः इस संगठन को 'मानव-कल्याण परिषद्' के नाम से सम्बोधित किया गया है जो कि सर्वथा यथार्थ है।

●

# मानवता और हमारा कर्त्तव्य

मानव-मात्र के सुख-दुःख, हानि-लाभ और हिताहित को वैसे ही समझना मानना और जानना, जिस प्रकार एक मनुष्य स्वयं अपने लिए समझता जानता और मानता है। ऐसा ही निरन्तर मनन करना यही मनुष्यत्व है।

अतः इससिद्धान्त को निरन्तर ध्यान में रखकर मन वचन औरकर्म से सबके साथ वैसा ही व्यवहार करें जैसा एक मनुष्य स्वयं अपने लिए चाहता है। तत्व रूप में यह समझना चाहिये कि जो काम (व्यवहार) अपने आत्मा के अनुकूल हो प्रत्येक मानव के साथ वैसा ही किया करे। और जो व्यवहार अपने आत्मा के प्रतिकूल हो वह किसी के साथ कदापि न करे। इस लिए एक मनुष्य संसार में स्वयं जिस प्रकार जीना चाहता है, उसी प्रकार दूसरे को भी जीने का अधिकार समझ कर सब को जीने दें। 'जीवो और जीने दो' यह एक उत्तम भावना है।

जिस प्रभु ने जो इस अनन्त सृष्टि का सृजनहार है, उसने सबको सुख पूर्वक जीने और सबके कल्याण के लिए आदि सृष्टि से ही बुद्धि रखने वाले प्रत्येक मनुष्य-मात्र को जैसे पिता पुत्र को आदेश देता है कि 'मनुर्भव' ! हे मानव ! तू स्वयं मानव बन और सब के साथ निरन्तर मनुष्यता का व्यवहार किया कर ! इसी में तेरा और सब का कल्याण है।

इसी उपरोक्त भाव का स्पष्टीकरण एक कवि ने इस प्रकार किया है :—

त्याग-तपस्या से परिपुष्ट, हुआ जिस का तन है ।
भद्र-भावना भरा स्नेह संयुक्त, शुद्ध जिसका मन है ।
होता व्यय निश-दिन परहित में, जिसका शुचि संचित धन है ।
वही श्रेष्ठ सच्चा मानव है, धन्य उसी का जीवन है ॥

अर्थात् जिसके तन-मन और धन की निरन्तर ऐसी सुव्यवस्था बनी है । वही वास्तव में सच्चा मानव है । जो इस व्यवस्था को नहीं समझ पाया, न बना ही पाया है वह मनुष्य मनुष्यत्व से गिरकर दानव बन सकता है ।

खेद है कि आज के युग में मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को नितान्त भूला और निरन्तर भूलता ही जा रहा है । अपितु उसका आचार-विचार एवं व्यवहार नित्यप्रति इतना गिरता जा रहा है कि वह साक्षात् पशु और पक्षियों से भी बदतर होता जा रहा है ।

यथा : मनुष्य समाज में गरूड़ के समान चाल चलन अर्थात् गर्व-अहंकार और घमण्ड आदि का उद्भव; गीध के समान लोभ परस्पर लूट-खसोट कर एक दूसरे के मांस पर स्वयं पुष्ट होने की तीव्र इच्छा; पशु-पक्षियों की भांति ताड़ना, अत्यन्त उन्मत्तता, कामातुरता आदि की तृप्ति हित नित्य निम्न आचार; कुत्ते के समान रहन-सहन अर्थात् परस्पर में लड़ना झगड़ना, टुकड़े के स्वार्थ के लोभ में अपने ही भाइयों का सर्व-नाश, अनाचारी के आगे गिड़गिड़ाना और पूंछ हिलाना; इत्यादि ।

उल्लू के समान अन्धकार प्रिय, ज्ञान प्रकाश मार्ग तथा अपने कल्याण मार्ग को छोड़ अविद्यादि घोर अन्धकार में पड़ पुनः स्वयं अभाव और अन्याय का शिकार हो सर्वत्र मूर्खता का व्यवहार करना, आदि ने परमात्मा की सृष्टि के सौन्दर्य को सर्वथा विकृत एवं विध्वंस कर दिया है ।

यह सब प्रत्यक्ष देख और अनुभव करके सर्वोच्च उन्नत एवं उदार भावना को विशेष स्थान दिया है। जिससे परस्पर कर्त्तव्य पालन की भावना भी सम्भव है। तभी एक मनुष्य प्रत्येक के साथ स्वयं कर्त्तव्य पालन कर सकेगा। और उसमें वसुधैव कुटुम्बकम् की उच्च भावना उत्पन्न हो सकेगी। इसीलिए यहां किसी प्रकार की भी सीमित एवं संकुचित भावना रखना अथवा किसी समुदाय एवं जाति विद्वेष के लिये कोई स्थान ही नहीं है। क्योंकि समस्त मानव-जाति के साथ सद्भाव पूर्वक समभाव एवं उदार-भावना रखना कितना विशेष महत्व रखता है। इसलिए हम सारे संसार को ही एक परिवार के रूप में देखते हैं। ऐसा हमारा दृष्टिकोण है।

जिसके लिए निरन्तर यह कामना है कि परिषद् का प्रत्येक सदस्य ही इस प्रकार की उदार एवं सर्वोच्च भावना का बन जाए जो यह समझ ले कि मैं एक अमर और अविनाशी आत्मा हूं। जिसका किसी विशेष उद्देश्य-पूर्ति के लिए ही इस पृथ्वी तल पर अवतरण हुआ है और इस समस्त पृथ्वी के वासी मानव-मात्र ही मेरा एक बड़ा परिवार है मैं उस बड़े परिवार का एक घटक हूं। अतः उसके सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होना एक स्वाभाविक बात है।

जिस प्रकार हमारे शरीर के किसी भी अंग पर किसी प्रकार का आघात हो तो सारा शरीर ही बेचैन होकर बहुत कष्ट अनुभव करता है। जब तक उसका उचित भली भान्ति उपचार नहीं हो पाता, उसका विशेष कष्ट बना ही रहता है। और उस कष्ट के सर्वथा निराकरण के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। पुनः पूर्णतया उपचार होने पर ही उसे शान्ति मिलती है। ठीक इसी प्रकार कहीं भी किसी प्रकार की आपत्ति या आघात

होने पर मुझे तड़प उठना है ऐसी ही आत्मीयता की अनुभूति होनी चाहिये। जो ललकार कर कह सके :—

दानवता से त्रस्त हुई मानवता रखवाने को।
मेरा निर्माण हुआ जग में, मानवता फैलाने को ॥

इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इस मिशनरी कार्य क्षेत्र की कोई सीमा ही नहीं है। अतः हमें इस महान उद्देश्य के प्रति जागरूक हो, स्वयं-मानव निर्माण एवं सर्वतः असीमित निर्मित जन-शक्ति का निरन्तर संचय करते रहना है। और इस प्रकार उद्देश्य पूर्त्ति-हेतु आगे ही आगे निरन्तर बढ़ते जाना है।

क्योंकि यह एक महान मिशन है, जिसके सम्मुख एक मानव का ही नहीं अपितु प्रत्येक प्राणी-मात्र का जिनका अपने अपने स्थान पर बहुत बड़ा महत्त्व है। प्रभु ने जो सृष्टि रची है वह व्यर्थ नहीं है। जिसका मूल्य एव सार्थकता भली-भांति मनन करने पर एक मानव ही समझ सकता है। फिर समझ सकता है कि मानवता क्या है ? और उसका कितना बड़ा महत्त्व है !

अतः इसके लिए हमें अपने तन के कण कण से, मन से और सर्व धन सम्पत्ति से, मानव-मात्र के सुख और कल्याण के लिए निरन्तर ही प्रयत्नशील रहना है।

इसलिए वर्त्तमान में सर्वत्र जो भी मानवता के विपरीत व्यक्ति से समष्टि तक पारस्परिक व्यवहार का बनना अथवा नाना विध गतिविधि का होना ही इस सर्वहित-साधक क्रान्ति के आगमन का प्रधान कारण है। जिसका एकमात्र उद्देश्य संसार से घृणा, अहंकार, लोभ, व्यभिचार, परस्पर संघर्ष, ईर्ष्या-द्वेष, अज्ञानता और क्रूरतापूर्ण हिंसा को दृढ़ संकल्प के साथ सर्वतः समाप्त करना है। अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य

इन छः सार्वजनिक सर्वभ्रष्टाचार जनक एवं सर्व संहारक व्यक्ति व समष्टि को सभी मनोंविकारों से सर्वथा मुक्त कर एक आदर्श सर्व व्यापी सत्य और न्याय द्वारा सच्चे सुख और शान्ति की स्थापना द्वारा सर्वोच्च एवं विशुद्ध आदर्श श्रद्धामयी मानवता का सर्वत्र स्वच्छ वातावरण उत्पन्न करना है ।

जिसके लिए उच्च एवं निष्पक्ष मानवता के सच्चे श्रद्धालु उदार मनः तथा विशुद्ध भावना वाले मानव-इष्ट मित्रों को यह एक विशेष आह्वान है, कि शीघ्र ही वह अपने उदार मनः एवं उन्नत भावना से अहं और स्वार्थ का सर्वतः परित्याग कर मानवता की उच्च एवं सर्व-सेवा के लिए सन्नद्ध हो कार्य क्षेत्र में आगे बढ़ें । और तत्कालः —

द्वेष, दम्भ, दुष्कर्म, दर्प, दुर्नय को दूर भगाओ ।
समता, स्नेह, शील, शुचिता, सद्गुण, सद्भाव बढ़ाओ ।।

यही मानवता है और उसके प्रति हमारा सबका यही कर्त्तव्य है ।

यदि हमने मानवता के इस उपरोक्त विशुद्ध स्वरूप को भली भांति समझ लिया, और अपना जीवन भी इसी ढांचें में ढाल, स्वयं को मानव बना लिया, तो आज इस संतप्त जगत् जो अशान्त, दुःखी और निरन्तर पथभ्रष्ट हो रहा है । जहां प्रत्येक राष्ट्र, प्रत्येक जाति, और प्रत्येक व्यक्ति पारस्परिक विद्वेष, वैर-विरोध, घृणा और स्वार्थाग्नि से दग्ध हो रहा है । वहां एक दूसरे के खून का प्यासा बन रहा है । तदर्थ नित्य नये २ मानव-संहारक बौद्धिक आविष्कार किए जा रहे हैं । मानो आज मनुष्य ने मनुष्य को सर्वतः विनाश करने की ठान ली है ।

ऐसी स्थिति में यह न रसिया को खतरा न अमेरिका को, न पाकिस्तान को खतरा, न भारत को, न एशिया को खतरा, न यूरोप को, यह तो सीधा मानव को और मानव समाज को तथा मानवता को ही खतरा है ।

उसको आस्तिक-भावना के साथ मानवता की रक्षा के अनन्तर ही सच्ची और क्रियात्मक रूप से वास्तविक शान्ति का जहां सन्देश दे सकेंगे वहां यथेष्ट रूप में मानव-मात्र की सेवा और मानव-समाज का पथ प्रदर्शन भी कर सकेंगे ।

वैसे तो शान्ति का सन्देश बहुतेरे दे रहे हैं, शान्ति और मनावता के नाम पर बड़े २ ढोल पीटे जा रहे हैं, परन्तु उनके द्वारा शान्ति और मानवता की आड़ में प्रायः अशान्ति और अमानवता की आग भड़काई गई है, जो निरन्तर भड़काई जा रही है । जिससे जहां स्वयं हमको सदैव सर्वथा सचेत रहना है वहां मानव-समाज को भी निरन्तर सचेत करते रहना है ।

क्योंकि यह संगठन प्रत्येक मानव-मात्र को सदैव आत्म-सम्मान के साथ जीवित रहना सिखाता है और 'जीओ और जीने दो' का पाठ पढ़ाता है ।

क्योंकि हमारी किसी से तनिक भी शत्रुता नहीं है और कोई भी मनुष्य तो क्या, कोई भी प्राणी शत्रु नहीं है । अपितु हमें मनुष्यत्व के नाते सब मनुष्य, प्रभु की सन्तति के नाते प्रत्येक प्राणी में अपनत्व दीखता है । इसी प्रमुख एवं सर्वोन्नत विचार और दृष्टिकोण से आज सारा ही जगत् हमारा है और हम सब उसी की यथेष्ट सर्व-सेवा के लिए हैं, तथा इसी में ही अपने जीवन की उपयोगिता समझते हैं ।

जिसके लिए मानव-कल्याण परिषद् ने संगठित एवं

अनुशासित रूप से जन-कल्याणार्थ एक महान पग उठाया है। जिसका प्रत्येक सदस्य अपने हृदय में इसी उद्देश्य के प्रति —

मानव-कल्याण-कार्यं — महत्कार्यम्।
मानव-कल्याण-कार्यं — पुण्य-कार्यम्।
मानव-कल्याण-कार्यं — ईश्वरीय-कार्यम्।

की श्रद्धया पूर्ण आस्था रखता है।

अतः —

धरती पर सुख शान्ति बढ़ाओ,
देकर निज श्रम-शक्ति;
मानवता का अर्थ यही है,
और यही है प्रभु भक्ति॥

# मानवता का आधार क्या है ?

मानवता का आधार आस्तिकता है। प्रश्न उठता है फिर आस्तिकता क्या है ?

सो संक्षिप्त रूप में उस सच्चिदानन्द स्वरूप प्रभु के वास्तविक स्वरूप को जो इस अनन्त सृष्टि का उत्पत्ति कर्त्ता, धर्त्ता और हर्त्ता है। तथा सृष्टि के असंख्यात् असंख्य जीवों के सब कर्मों का साक्षी, और प्रत्येक जीव के कर्मानुसार उनके सब कर्म-फल का दाता है ।

ऐसा आन्तरिक रूप से उसे तथ्यरूप में मानना जानना और सर्वत्र अनुभव करना, इसी को आस्तिकता कहा जाता है ।

वैसे तो संसार का १/३ भाग ईश्वर को किसी न किसी रूप में मानता है परन्तु यथार्थ रूप में उसे सर्वत्र अनुभव करता और पुनः जानता कोई विरला ही है ।

इसीलिए वर्तमान में आस्तिकता के वास्तविक स्वरूप को न जान कर ही आज संसार में सर्वत्र भौतिकवाद और भोगवाद के एक छत्र साम्राज्य ने पहले की अपेक्षा कहीं अधिक भयावह रूप धारण कर लिया है ।

अतः आज सर्वत्र प्रत्येक सच्चाई और अच्छाई का मूल्यांकन रूपये पैसे में ही होने लगा है ।

अतः जन-साधारण ने पैसे में ही सुख मान लिया है । पैसा साधन तो है, पर उसे आज साध्य मान लिया गया है । जो एक बहुत बड़ी भूल है। इसीलिए आज खाद्य-पदार्थों तक में मिलावट करना, रिश्वत लेना देना, सर्व भ्रष्टाचार जनक नाना भांति के सब कुकर्म करना आदि सब एक साधारण बात हो चली है । और किसी के सुख दुःख की तनिक भी चिन्ता नहीं है ।

पुनः वास्तविक रूप में पारस्परिक प्रेम-सम्बन्ध, सहानुभूति और सद्भावनाएँ सभी कुछ एक २ करके लुप्त होते जा रहे हैं। और उनके स्थान पर एक दूसरे के प्रति अविश्वास राग-द्वेष घृणा प्रति हिंसा की मात्रा प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। कैसी भयावह स्थिति है यह ? और इन सब के मूल में क्या है ! सच्ची और व्यावहारिक आस्तिकता (प्रभु-भक्ति एवं उसकी सर्वश्रेष्ठ मान्यता) का सर्वथा अभाव !

वह आस्तिकता जो मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन को निर्मल करती हुई उसके बीच सामंजस्य स्थापित कर सके। वह आस्तिकता जो मनुष्य के नैतिक धरातल को ऊंचा उठाने में सहायक बनकर उसे सही अर्थों में मनुष्य बना सके। तथा वह आस्तिकता जो मनुष्य को समाज और राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य पालन में जागरूक बनाते हुए प्रभु की इस पावन विश्व-वाटिका का एक सुरभित और विकसित पुष्प बना सके। वास्तव में आस्तिकता का यह रूप ही उसका चिरन्तन स्वरूप है। जिसका आज सर्वत्र अभाव है।

इसीलिए आज सारा मानव-समाज ही दुःखी है। क्योंकि मनुष्य आन्तरिक रूप से प्रभु की विस्मृति के कारण सर्वथा खोखला हो चुका है। अतः उसके मन, वचन और कर्म में भिन्नता विद्यमान है। यही वास्तविक रूप में प्रच्छन्न ( ढकी हुई ) नास्तिकता आज एक भयंकर रूप धारण कर नाना-विध पापों का कारण बन अपनी चरमसीमा तक पहुँच चुकी है। इसीलिए जन-कल्याण की सभी बातें, धर्म, नैतिकता, संस्कृति, आस्तिकता और मानवता का सरे आम उपहास हो रहा है। इस प्रकार प्रत्येक अच्छी बात का इतना दुरुपयोग हो चला है कि प्रायः सर्वत्र सब स्वार्थ एवं उदरपूर्ति का ( पैसे कमाने का ) साधन

बनाया जा रहा है। इतना ही नहीं !

आज धर्म और आस्तिकता की आड़ में अनैतिकता की मनोवृत्ति के जनक नानाभान्ति के पाखण्ड और अन्ध विश्वास अपना भयंकर रूप धारण कर सर्वत्र भयावह आतंक उत्पन्न करने का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में भरसक प्रयास कर रहा है।

जिससे-जन साधारण में एक घृणित एवं विषैले विचार का प्रसारक बन व्यापक रूप से "मानवता और आस्तिकता तथा धर्म और ईश्वर एक ढोंग और पाखण्ड-मात्र है। और यही आज सब मुसीबतों की जड़ है। इसीलिए जनता को तत्काल सुखी और समृद्ध बनने के लिए इसे सर्वतः बाहर फैंक देना चाहिये"। जिससे प्रभावित हो आज का युवक-वर्ग प्रायः इसी ढंग से सोचने लगा है। जिसे आज कोई बुराई व भलाई की तमीज ही नहीं है। फिर मानवता और आस्तिकता के इस गम्भीर विषय पर वह क्यों और कैसे सोचेगा? जो आज समान रूपसे सबके लिए एक महती चिन्ता का विषय बना है। जबकि सच्ची आस्तिकता और मानवता ही विश्व के सब प्राणी मात्र के सुख समृद्धि सच्ची और स्थायी शान्ति का एक-मात्र आधार है। पुनः प्रभु प्राप्ति तो मानव-जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

इसलिए किसी भी अच्छी वस्तु का सदुपयोग संसार के लिए सदा ही जितना कल्याणकारी है, और सर्वोन्नति एवं सर्व विकास का कारण भी है। ठीक इसी प्रकार उसका दुरुपयोग भी जनता को गहरे अन्धकार के गढ़े में गिराने वाला है। क्योंकि सच्ची आस्तिकता और भक्ति वाद में :— अध्यात्मक एव भौतिकवाद, प्रत्यक्ष और परोक्ष लोक एवं परलोक, श्रद्धातत्व एवं तर्क तत्व, भाग्यवाद एवं पुरुषार्थ, तथा त्याग और भोगवाद का समुचित सामंजस्य है। जो ऐहिक और पारलौकिक उन्नति के समन्वय रूप धर्म का प्रति

पादन है। इस प्रकार 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' और 'योगः कर्मसु कौशलम्' इन सूक्तियों में आस्तिकता और मानवता का उपरोक्त सही रहस्य छिपा है।

अतः हमें यह सब इस प्रकार समझना चाहिये कि केवल प्राणी-मात्र के प्रति अपने कर्त्तव्य कर्मों का सम्यक पालन ही सच्ची प्रभु-भक्ति एवं आस्तिकता है। तब तो हम स्वतः स्पष्ट रूप में यह समझेंगे कि मानव-पूजा ही सच्ची ईश्वर पूजा है।

दरिद्र, दुःख भंजन, आर्त्त-मानवता की सेवा तथा व्यवहार की शुद्धता और वास्तविकता ही सच्चा, यजन, भजन और पूजन है। क्या ही अच्छा हो कि हमारा समाज वास्तविक रूप में आस्तिकता के इस आचार-प्रधान रूप को ठीक २ समझ सके। परन्तु इसे ठीक समझने पर भी सत्यता से निभा सकने के लिए सजग, ईश्वर-विश्वास, अनन्त आत्म बल, आत्म निरीक्षण, दृढपुरुषार्थ, विनम्रता, निर्भीकता, सब प्राणियों में स्वात्मभावना, कुसंस्कारों के मलों को धोकर सुसंस्कारों के जागृत करने तथा नाना विधपापों के कारण रूप अभिमान और अवमान की भावना को मिटाने केलिए यह परमावश्यक है कि मनुष्य अपना सम्बन्ध उस अनन्त-शक्ति के स्रोत प्रभु से स्थापित करें। यह आस्तिक्य ( प्रभु - भक्ति ) का ईश्वर-विश्वास प्रधान रूप है। भक्ति का वह रूप जिससे साधक में उत्तम गुणों का समावेश और सर्व विकास होकर वह लोक-संग्रह कार्य में प्रवृत्त होता है। जो आस्तिकता (भक्ति) का सार्वभौम रूप है।

ऐसा कर्मशील मनुष्य जीवन मुक्त होकर अपने समस्त व्यवहारों का अनासक्त भाव से उच्च-आदर्श से अनुप्राणित होकर करता है। यही गुण विश्व शान्ति का मूल है।

यही कारण है उसकी आस्तिकता एवं ज्ञान के अभाव क

कारण ही आज समस्त संसार पथ-भ्रष्ट होकर एक महान पतन की ओर अग्रसर है। इससे जहां वह आत्मिक ज्ञान से वञ्चित है वहां उसमें कर्त्तव्य-सूझ भी कैसे उत्पन्न हो ? यही कारण है कि आज मनुष्य मनुष्य को आत्मीयता की भावना से नहीं देखता। अपितु स्वार्थ रूप में देखता है। और प्रत्येक व्यक्ति भी किसी अन्य व्यक्ति को स्वार्थ रूप में भी कितना और क्या सम्बन्ध समझता है ? जब कोई सम्बन्ध ही नहीं, तो कर्त्तव्य पालन की भावना किसके लिए और क्यों हो ?

क्योंकि हम यह सोचते ही नहीं, कि हम सब किसकी सन्तान हैं ? और हम सब का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है ? हमारा एक दूसरे के प्रति मानवता के नाते मनुष्य मात्र के लिए कितना और क्या कर्त्तव्य है ? जिसके जाने बिना हम सब प्रति दिन अधोगति की ओर जा रहे हैं।

जब एक मनुष्य स्वयं अपने आप को प्रभु का पुत्र माने और जाने और इसी भान्ति प्रत्येक मनुष्य मात्र को एक प्रभु पुत्र अर्थात् एक पिता के पुत्र होने के नाते सबको ही एक पिता के पुत्र की भांति जाने और माने तो फिर भला भाई से भाई का प्यार क्यों न होगा ? और किस पर अपनत्व और अधिकार न होगा ? अपितु ऐसी आस्तिक सृष्टि में तो सभी वस्तु सभी की होगी ? तभी तो सब पदार्थों का त्यागभावेन परस्पर कर्त्तव्य के नाते सभी समान रूपसे उपभोग करेंगे। फिर इस उच्च एवं पवित्र पारस्परिक सम्बन्ध की भावना से इतना ऊँचा आदर्श-भाव उत्पन्न होता है, केवलमात्र एक आस्तिक भावना के जागृत होने से। इस प्रकार तभी सर्वत्र प्रत्येक मानव वास्तविक रूप में सच्चे और अच्छे मानव बन सकेंगे।

परन्तु आज का व्यक्ति तो केवल मात्र अपने आप को ही सब कुछ मानने लगा है। वह किसी अन्य व्यक्ति या शक्ति को अपने समान या अधिक एवं ऊपर किसी को भी कर्त्ता-धर्त्ता और हर्त्ता नहीं मानता। वह भूल गया इस बात को कि इस जगत् में मनुष्य कहां से और कैसे उत्पन्न हो गया। और कहां से आ गया यह इतना विशाल और अद्‌भुत जगत्? आखिर इसका कोई उत्पत्ति कर्त्ता तो होगा ही? क्या शक्ति है जो इतनी बड़ी अनन्त सृष्टि को उत्पन्न करके फिर अपने एक नियम-चक्र में चला रहा है। यदि संसार में एक नियम ही न रहे तो यह अनन्त सृष्टि कल समाप्त होती क्षणों में ही समाप्त हो जाय। और हम भी न देख सकें कि यह सब कैसे और क्या हो गया?

अतः वास्तव में परस्पर सच्चा भ्रातृत्व, एकरूपता, समता आदि सद्‌गुण केवल मात्र आस्तिक बुद्धि द्वारा ही उत्पन्न होते हैं। इसी आस्तिक बुद्धि एवं विचारों के अभाव के कारण ही जिसने हम सब को उत्पन्न किया है हम उसी को ही नहीं जानते। इससे बढ़ कर और क्या आश्चर्य हो सकता है! जो इस सारे जगत् के प्राणी मात्र का उत्पत्ति कर्त्ता, सब का पिता है। हम उसी को न जानें, न मानें, उसके न बनें और उसको सर्वथा ही भूल जायें! फिर एक मनुष्य को प्रत्येक मनुष्य के प्रति कर्त्तव्य-परायणता और अपनत्व का भाव जागृत कैसे रह सकता है? फिर उसके केवल मात्र अपनी निजी स्वार्थ भावना के अन्य मनुष्यों और प्राणियों के प्रति कर्त्तव्य की सूझ कैसे हो?

वह जब मूल से ही कट गया तो फिर उसके पतन की सीमा भी कहां और क्या हो सकती है? अतः उसकी सूझ-बूझ भी नितान्त गलत हो गई होती है। अब तो उसकी दृष्टि भी बदल गई, बिचार बदले, हृदय बदला, पुनः चरित्र-भ्रष्टता की सीमा

न रही ही। क्योंकि जिस वृक्ष की जड़ कट जाये, पुनः उसके कहीं लगने लगाने और विकास की तो आशा ही नहीं रहती।

यदि आज हम संसार में एकता, प्रेम, भ्रातृत्व उत्पन्न करना चाहते हैं तो सर्व प्रथम उस अनन्त शक्ति के उपासक बनें। और समझें कि हम सभी एक मात्र उसी के हैं और वही हम सब का है।

तब फिर संसार में अशान्ति, अन्याय, अभाव, स्वार्थ, युद्ध आदि सब पाप स्वयं तत्काल सदैव के लिए समाप्त हो जाये। और हम जान सकें पारस्परिक सम्बन्ध को। क्योंकि आस्तिक भावना के बिना वह मानवता की विशुद्ध भावना उत्पन्न ही नहीं हो सकती। और हम झूठ, छल, कपट, धोखा, चोरी, डाकेजनी आदि सब पापों से विमुक्त होकर सत्यवादी, सद्व्यवहारी और सदाचारी रह ही नहीं सकते। पुनः सर्व प्रकार के दुराचारादि पापों के शिकार न हों तो और क्या हो ?

अतः आस्तिक भावना को मानव समाज में तत्काल जागृत किया जाना चाहिये। ताकि मनुष्य मात्र में समता का वास्तविक सच्चा और ऊँचा भाव उत्पन्न हो सके।

क्या संसार में इससे बढ़ कर भी ईश्वर का उपहास उड़ाया जा सकता है, कि किसी पर आक्रमण के समय भगवान का नाम लेकर और उसके नाम का नारा बुलन्द किया जाये। चोर चोरी से पहले और डाकू डाका डालने से पहले, अथवा यह कहिये कि आज का मनुष्य किसी भी अपनी भली बुरी गर्ज के लिए परमात्मा के साथ एक सौदा करता है, यदि मेरा अमुक काम पूरा हो जाए तो मैं अमुक पुण्य का काम तेरे नाम पर कर डालूं। क्या यह आस्तिकता है ? फिर कई लोग इसी को आस्तिकता समझते हैं। और समझते हैं ईश्वर की भक्ति—कि हम भले बुरे जो भी काम किया करें, पहले उसका नाम लेलो। बस सफलता हमारी ही है।

न जाने हमने प्रभु जैसे अनन्त शक्ति को खिलौना समझा है या व्यापारी ?

यदि हम वास्तव में प्रभु के सच्चे भक्त हैं, उसके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धा और प्यार है, तो प्रेम में सौदा नहीं होता। इसी से देखो कि हम उसे कितना मानते हैं और उसके कितने हो गए हैं ? तथा उसके उपासक हैं। अन्तरात्मा में गम्भीरता से बुद्धि पूर्वक विचार से स्वयं स्पष्ट होगा कि हम तो एकदम नास्तिकता के प्रवाह में ही बहे जा रहे हैं ।

इस प्रकार हम स्वयं तो बदले सो बदले और भूल गये अपने वास्तविक-स्वरूप को भी ! परन्तु इसके साथ ही हमने अपनी अज्ञानता के कारण प्रभु के स्वरूप को भी बदल डाला और उसकी सत्ता को भी भूल बैठे ।

यह स्पष्ट है कि हम जितने २ प्रभु के सच्चे श्रद्धालु भक्त एवं प्रेमी उपासक बनते जायेंगे, तो हमारे सब कर्म और पवित्र भाव बदले जा सकेंगे। और पुनः हमारी आत्मा में मानवता का विशुद्ध स्रोत स्वयं बह उठेगा। यदि प्रभु से दूरी रही तो फिर दानवता के शिकार होकर निरन्तर नाना भान्ति के दुःख और अशान्ति ही बनी रहेगी।

कई कहते हैं 'भूखे को नहींभजन गोसाईं' रोटी और कपड़ा ही शान्ति का कारण है, ऐसा नहीं । वास्तव में आस्तिकता और मानवता ही समस्त मानव-समाज में एक मात्र स्थायी शान्ति और सुख का मूल है ।

जब जन-साधारण के जीवन में इन दोनों का समावेश होगा तब स्वतः परस्पर अपनत्व, एकता, समता व भ्रातृभाव उत्पन्न होने लगेगा, सब अपने २ कर्त्तव्य का पालन एक दूसरे के प्रति स्वयं

करने लगेंगे।तब तो सारे प्राणी-मात्र का ही कल्याण हो सकेगा ! मनुष्य का तो कहना ही क्या ! और किसी भी देश और किसी भी देश के मनुष्य को किसी प्रकार का अभाव भी न रहेगा। सदैव सर्वत्र सुकाल होगा। फिर किस पर कौन अन्याय करेगा। जब कि अविद्या, अभाव आदि सब पाप स्वतः ही समाप्त हो जायेंगे। और अमानवता की जननी नास्तिकता का सर्वथा विनाश होकर यह सारा संसार ही एक स्वर्ग-धाम बन जायेगा।

इसीलिए इस संगठन ने आस्तिक भावों को जागृत करते हुए प्रेम, सत्य और न्याय के आधार पर संसार में मानवता का विशुद्ध एवं निष्पक्ष वातावरण उत्पन्न करना ही अपना ध्येय अपनाया है। क्योंकि आस्तिकता ही एक मात्र वास्तव में श्रद्धामयी मानवता का मूलाधार है।

पुनः आस्तिकता से सनी मानवता द्वारा ही संसार से सब प्रकार का भय, विषमता और अशान्ति दूर हो सकेगी। और परस्पर सब मिलकर अपने लिये कल्याण मार्ग का अनुसरण कर सकेंगे। फिर बहेगी सर्वत्र एक पवित्र प्रेममयी गंगा। जिसमें सभी डुबकी लगा २ सभी पापों से छुटकारा पा सकेंगे। यह होगा वास्तव में मानवता का एक आदर्श वातावरण। जिसके लिये हम निरन्तर प्रयत्न शील हैं।

# मानव जीवन और उसका निर्माण

प्रारम्भ से अब तक जो भी गुण मानव बनने के लिए वर्णित किए गये हैं अथवा यह "मानवता" के सम्बन्ध में जो भी विचार व्यक्त किए गये, वह सभी गुण एक व्यक्ति के वास्तविक रूप में अपनाने पर एवं जीवन में क्रियात्मक रूप से धारण करने पर ही एक व्यक्ति स्वयं मानव बनता अथवा 'मानव' कहलाता है।

पुनरपि कुछ विस्तार से मानव-कल्याण एवं मानव-निर्माण के लिए विशेष रूप से इस सम्बन्ध में कुछ स्पष्टीकरण किया जाता है। अर्थात् एक मानव को सच्चा, अच्छा और ऊँचा मानव बनने के लिये उन सभी गुणों को किस प्रकार धारण किया जा सकता है ?

तदर्थ मानव-जीवन क्या है ? सर्व प्रथम यह जानना आवश्यक है कि यह मानव-जीवन जीव के विशिष्ट-कर्मों व गुणों के आधार पर ही जो प्रभु की एक विशेष देन है एवं एक अनुपम-उपलब्धि है।

मानव-जीवन को बड़े २ महात्मा, ज्ञानी, ध्यानी और अनुभवी साधकों में से किसी ने इसे 'शत सांवत्सरिक यज्ञ' कहा किसी ने एक यात्री की लम्बी यात्रा बताया। परन्तु किसी ने तनिक भी इस इतनी लम्बी यात्रा की कोई अन्तिम तिथि निश्चय पूर्वक नहीं बतलाई, फिर भी वह एक यात्री इस यात्रा के लिए चल पड़ा है।

प्रायः इस बात पर आश्चर्य होता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी किसी भी छोटी-बड़ी यात्रा के लिए कुछ न कुछ तैयारी अवश्य करता है। नाना प्रकार के प्रबन्ध व सौ समान जोड़ता है। परन्तु इस महान जीवन की एक लम्बी यात्रा के लिये कभी कुछ सोचता

तक नहीं। ज्यों त्यों करके दिन काट लेता है, हंस लेता है, रो लेता है, खा लेता है, पी लेता है। सांस चलने को ही जीवन समझ कर जी भी लेता है। ऐसा होते २ अन्तिम समय भी आ जाता है।

सब को ज्यों का त्यों छोड़, सब रिस्ते सम्बन्ध तोड़, दिल की दिल में लिए, आन की आन में, हम इस नश्वर संसार से अकेले ही चल देते हैं। वह भी एक अज्ञात ध्येय की ओर! न जाने किधर!

जब तक मनुष्य जीवित रहता है, वह किसी की चिन्ता ही नहीं करता, उसे किसी के सुख दुःख की तनिक भी चिन्ता ही नहीं! वह किसी को भी अपने बराबर नहीं समझता, और भूल जाता है, जिसने इस जीव को मानव चोला दिया, उस भगवान को भी। जिसने संसार में नाना भान्ति के भोग, ऐश्वर्य, सब सुख सामान दिये हैं।

यह ठीक है कि मनुष्य अन्य प्राणियों की अपेक्षा बहुत कुछ ज्ञान और बुद्धि रखता है और शक्तिशाली भी है। परन्तु हमें यह क्षण भर के लिये भी न भूल जाना चाहिये कि यह मानव-जीवन भी एक क्षण-भंगुर पानी के बुलबुले के समान ही तो है।

यह मानव-जीवन हमारे अनेक जन्मों के संचित कर्मों के फल स्वरूप ही प्राप्त होता है। हमें चाहिये कि इस सुनहरी अवसर से पूरा २ लाभ उठायें। जो भी समय मिला है, इससे शारीरिकोन्नति, आत्मिकोन्नति तथा जगत् कल्याण के लिए जो भी बन पाये, हमें अवश्य ही करना चाहिये। यह सब कुछ कर्म अन्य जन्मजन्मान्तरों के लिये जो पुनः मानव-जीवन प्राप्ति में विशेष कारण बनते हैं, जिसे हमें कभी भूलना न चाहिये। 'कर्म-फल टारे नहीं टरे' अपने किये गये सभी भले बुरे कर्मों का सर्वभोग हमें भोगना ही पड़ेगा।

हम अपने सोभाग्य से प्राप्त इस मानव-जीवन को सार्थक बनाने के लिये शुभ-कर्म सञ्चय, सब प्राणी-मात्र की सेवा, जिससे

जीवन देने वाले भगवान का ऋण चुकाया जा सकता है। और उन शुभ कर्मों द्वारा ही मनुष्य को आत्मिक शान्ति मिलती है। हम अपने कर्मों के द्वारा ही परमेश्वर तक को प्राप्त कर सकते हैं।

जिस अनन्त शक्ति प्रभु ने अपनी दया से मानव-जीवन में बुद्धि का खजाना देकर इसे मालामाल कर दिया है। अब मनुष्य वही है जो इसजीवन यात्रा के आरम्भ करते समय अपनी विचार-बुद्धि से पूरा २ लाभ उठाये। उसे संसार में होश आते ही यह निश्चय कर लेना चाहिये कि उसे किधर जाना है ? कहां पहुंचना है ? किस और मार्ग पर चलना है ?

यदि अपने जीवन की इस यात्रा में कोई बड़ा ध्येय भी निश्चित किया हो तो उसे सर्वतः अधिक जागरुक होकर चलना होता है।

उसे सर्व-प्रकारेण अपने लिए मार्ग निर्धारित करने के लिए सर्व-निरीक्षण, परीक्षण, अध्ययन एवं चिन्तन द्वारा मनुष्य को स्वयं अपनी २ स्थिति के अनुसार कोई न कोई मार्ग निकाल उसके लिए कार्य-क्रम बना लेना चाहिये। इसी में जीवन-सार्थकता है।

भगवान की अनन्त सृष्टि में अनन्त धन, सम्पत्ति, सर्व-सुख, भोगएवं सर्वत्र आनन्द स्रोत बह रहे हैं! वह सब किसी भाग्यवान कर्म-शील व्यक्ति को प्राप्त होते हैं।

यह सभी उपरोक्त मानव-मात्र के कल्याण के लिए मानव-जीवन का महत्व एवं मानव-पथ बतलाया है। यह ठीक है कि आज कोई किसी की सुनने और मानने के लिये तैयार ही नहीं, फिर भी संसार-यात्रा के सभी साथियों को अपने अनुभव के आधार पर सर्व-परामर्श देना भी हमारा परम कर्त्तव्य है।

यह सच है कि आज सभी जीव जीने की ईच्छा-मात्र लेकर

जी रहे हैं ? और सदैव जीना ही चाहते हैं। परन्तु मरना, इस संसार से जाना कोई भी तो नहीं चाहता । चाहे उसे इस संसार में कितने ही दुःख भी भोगने पड़ रहे हों ! आत्मा की यही सब से अधिक आकांक्षा बनी ही रहती है ।

तत्व ज्ञानियों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि आत्मा तो अमर है ! यह अपने कर्मानुसार नानाविध योनियों में नये २ शरीरों में प्रगट होती रहती है । आत्मा मरती नहीं ।

यहां संसार में जब हम नानाभांति की तृष्णाओं (इच्छाओं) से ऊपर उठ जाते हैं, तो आत्मा को सच्ची शान्ति मिलती है । और इस प्रकार संसार के आवागमन के बन्धन से मुक्त होकर परमात्मा में लीन हो जाती है ।

परन्तु आज मानव भौतिक-प्रगति की चकाचोंध से चुन्धिया सा गया है । उसकी झिलमिलाई दृष्टि भली प्रकार अपना मार्ग देखने में भी असमर्थ हो रही है । फलतः मानव पथ-भ्रान्त हो चुका है। वह ईश्वरीय लीला के प्रसार को देखकर भी उसके सार को भूल गया। अब वह यह अनुभव ही नहीं करता कि यह संसार एक कर्म का रंग-मंच है। हर कर्म का ईश्वरीय नियमानुसार उस का फल अवश्य ही मिलता है। यहां किये गए कर्मों के लिए कोई भी क्षमा करने की विधि या नियम ही नहीं है। यह सारी सृष्टि ही इस कर्म फल के न्याय पर आधारित है।

यदि हम अपनी ज्ञान-चक्षु खोल कर देखें तो आजकल हर जगह उदास चेहरे, भ्रान्त निगाहें, अस्थिर बुद्धियां और खिन्न मन ही सर्वत्र देखने को मिलेंगे।

राग-रंग, खेल-तमाशे, सिनेमा, नाटक, बाहरी चमक-दमक यह सब एक गहरी अपनी आन्तरिक सम्वेदना को छिपाये हुए हैं।

इसीलिए संसार में सब कुछ होते हुए भी ऐसे मनुष्यों के लिए कहीं भी सुख शान्ति ढूंढने पर भी नहीं मिलती।

अतः हम नाना भांति के खिलौनों से दिल बहलाना चाहते हैं। जीवन की गम्भीर तीव्र-सच्चाइयों को मदिरा में डुबो कर भुलाने मात्र का प्रयास करते हैं। इसलिए हम कभी धन के पीछे भागते हैं; कभी झूठे यश के लिए; कभी सत्ता की खोज में खो जाते हैं। परन्तु इतना प्रयास करने पर भी दिल की लगी आग कहीं भी नहीं बुझ पाती। इस प्रकार कितना अशान्त है यह वर्तमान हमारा जीवन ! कितना विविध समस्या पूर्ण ! थके-हारे जीवन-पथिक जीवन-भार उठाये, सिर झुकाये चले जा रहे हैं। एक अज्ञात भविष्य की ओर।

ऐसा लगता है, मानो ! मानव-जीवन के हाथों से मानव-जीवन की डोर प्रतिक्षण निकलती जा रही है और वह निस्सहाय रूप से खड़ा देख रहा है। ऐसा अवसर देख, हम भाग्य और भगवान को कोसना आरम्भ कर देते हैं।

पुनः हम दूसरों पर नाना भांति के दोषारोपण भी खूब करते और सदा ही करने को तैयार रहते हैं। परन्तु कभी अपने अन्तः-करणमें झांक कर भी नहीं देखते कि यह सब कुछ हमारी दुर्दशा का वास्तविक कारण हम स्वयं, अथवा हमारे जैसे हमारे अन्य साथी ही हैं। यह सब हमारी अपनी ही करनी आज हमारे सामने स्वयं आखड़ी हुई है।

हमारे स्वार्थ और अहं ने हमारे जीवन की सारी खुशियां लूट ली हैं। हमारे वैयक्तिक लोभ ने सामाजिक सौजन्य का दिवाला निकाल दिया है। अब पाप की गठरी सिर धरी है तो फिर सिर धुनने से क्या लाभ ? हमारी करनी ही हमारे लिए आज सब सजाएँ बनी हैं।

इसीलिए ईश्वरीय-तराजू में हम आज बुरी तरह तुले जा रहे हैं ! यहां रत्ती भर भी फरक होने वाला नहीं ! क्योंकि यहां अन्याय और पक्षपात का नाम और स्थान ही नहीं है ।

यदि आज हमें मानव-पथ प्रदर्शन के लिए कुछ भी और नहीं मिल पा रहा, तो हम सब स्वयं जहां तक पाप-पुण्य के स्वरूप को भलीभांति समझते हैं वहां तक भी कुछ शिक्षा नहीं ले पा रहे और हम कुछ भी समझ ही नहीं पा रहे । इस प्रकार हमारा नित्य का किया गया पाप का अभ्यास ही आज निम्नता की ओर घसीटे ले जा रहा है । क्योंकि मैं (जीव) स्वयं धर्म (कर्त्तव्य) के स्वरूप को भली प्रकार समझकर भी उस पर आचरण नहीं कर पा रहा । और अधर्म को जानकर भी उससे पीछा नहीं छुड़ा पा रहा ! कैसी है यह आज एक अद्भुत दशा हमारी ! हम तो कि कर्त्तव्य विमूढ ही बने बैठे हैं ।

इससे यह स्पष्ट है कि विचारों की अपेक्षा कर्मों की महिमा और महत्त्व कहीं अधिक है । अतः अब भी समय है, कि शेष बचे जीवन को ज्ञान पूर्वक कर्म में ही ढालते रहने में ही हमारा कल्याण है ।

उपरोक्त कथनानुसार जीवन के सम्बन्ध में सब कुछ जान और समझकर मानव बनने की आवश्यकता को आन्तरिक रूप से अनुभव करते हुए, स्वतः जिज्ञासा उत्पन्न होती है, कि ऐसा मनुष्य कौन और कैसे बन सकता है ? अर्थात् एक मनुष्य के निजी जीवन में ऐसी मानवता की उपज एवं मानवता के गुणों की सुन्दर खेती कहां और कैसे उत्पन्न हो सकती है ? इसका उत्तर एक सुन्दर उदाहरण के रूप में दिया जा रहा है । सो —

१—जिस व्यक्ति का हृदय क्षेत्र ऊघड़ दूघड़ न हो ! अपितु सर्वतः सर्वथा समतल हो ।

२—जिस क्षेत्र में नाना भांति के झाड़ बोझे न खड़े हो। अपितु साफ हो ।

३—जिसका हृदय रुपी क्षेत्र बिलकुल विनम्र एवं सर्वथा नरम हो ।

४—फिर जिस क्षेत्र में सुविचार रूपी बीज बोये गये हों।

५—पुनः उस क्षेत्र में प्रेम रूपी जल का भली भांति सिंचन भी किया गया हो ।

इस प्रकार पूर्ण तैयार किये गये ऐसे क्षेत्र में मानवता के सद्गुणों की उत्पत्ति अवश्य होती है । अर्थात् अपने जीवन की इस प्रकार की स्थिति एवं तैयारी करने व बनाने वाला व्यक्ति अवश्य ही एक दिन सच्चा, अच्छा और एक ऊँचा 'मानव' बन सकता है ।

क्योंकि मनुष्य के निर्माण में दो प्रमुख साधन एवं कारण होते हैं। पूर्व स्वयं दृढ़ संकल्प से निजी जीवन-निर्माण का निश्चय तथा इस बने हुए जीवन के लिए पुनः उसके आस पास का सामाजिक वातावरण। इस प्रकार दोनों का होना आवश्यक है।

इसके लिए यहां ऊपर के उदाहरण से यह स्पष्ट किया गया है कि व्यक्ति के निजी जीवन का निर्माण किस प्रकार किया जा सकता है अर्थात मानव मात्र का हृदय आन्तरिक रूप से जब विचार के साथ समान रूप से काम करेगा। पुनः बाह्य व्यवहार भी निरन्तर शुद्ध प्रेम, सत्य और न्याय के आधार पर होगा। तब वहां से पारस्परिक भय, विषमता तथा अशान्ति आदि सब पाप सर्वथा स्वतः समाप्त हो जायेंगे। ऐसे वातावरण में ही एक मनुष्य भी दूसरे मनुष्य का बनकर जी सकेगा । जो वास्तविक भ्रातृत्व है। ऐसा मनुष्य बनने पर तो विश्व संसार ही अपना परिवार होगा। सबका सब पर पूर्ण विश्वास और प्रेम भी समान होगा।

पुन: इस प्रकार वसुधा को ही कुटुम्ब माना तो सारे कुटुम्ब पर समानता से प्यार होता है । क्योंकि कुटुम्ब में तो समता का भाईचारे का बराबरी का साम्राज्य होता है। वहां विषमता का व्यवहार तो मानवता पर एक वज्र प्रहार ही है।

समता के लिए प्रेम और मैत्री का व्यवहार करना होता है। इसलिए हम सबको परस्पर समान रुप से मित्र भाव से देखें। और सभी को समता, एकता समानता के भाव से देख ।

पुन: अन्य सभी हमको समानरूप से समभाव और मित्र भाव व प्रेम भाव से अवश्य ही देखेंगे ।

इन उपरोक्त भावों से ओत प्रोत होने एवं ऐसे ही भावों के निरन्तर मनुष्य स्वयं मनन शील व मनन करने पर तथा क्रियात्मक रूप से व्यवहार होने पर ही एक मनुष्य स्वयं ही मनुष्य बनता है ।

यदि मनुष्य सचमुच इस प्रकार का मनुष्य बन जाए तो संसार भर का सारा उपद्रव और पाप आज ही समाप्त हो जाए।

अत: मनुष्य भी उभी को कहा है जो स्वात्मवत् अन्यों के सुख दु:ख और लाभ हानि को समझे और सबके साथ वैसा ही क्रियात्मक रूप में व्यवहार भी करे ।

अन्यायकारी बलवान से भी न डरे, और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे । इतना ही नहीं । किन्तु अपने सभी सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वह महा अनाथ, निर्बल और गुण रहित भी क्यों न हो। उनकी रक्षा उन्नति प्रियाचरण सदैव करता रहे।

जहां तक हो सके अन्याय के बल की हानि और न्याय के बल की सदैव उन्नति किया करे । चाहे दारुण दु:ख भी क्यों न

हो, चाहे प्राण भी भले ही चले जायें । परन्तु इस मनुष्य धर्म (मानवता) से कभी पृथक न होवे । (दया०) तभी मानवता की विजय होगी ।

परन्तु इससे अधिक मनुष्य का आज और क्या पतन होगा । कि मनुष्य केवल मात्र नाना भांति के अनर्थ और पापाचार करता हुआ तनिक भी संकोच तक नहीं करता ।

इसीलिए एक भाई दूसरे भाई को देख कर ही उसके विनाश एवं घात पात में लगा हो ! इतनी घृणा, इतनी दूरी, इतना भेद-भाव और इतना पतन ! कि एक दूसरे को देखते ही आंखें जलने लगें । प्रतिक्षण ही एक दूसरे के विनाश के लिए अपनी बुद्धि और बल का प्रयोग हो !

इस सब का एक मात्र कारण परस्पर वैमनस्य, वैर-विरोध अर्थात् मानव गुणों का सर्वथा अभाव ही है ।

सचमुच आज का मानव अपने आत्म स्वरूप को नितान्त भूल गया । और उसकी आत्म-अनुभूति भी तथा उसकी मनन-शक्ति भी जो प्राय: नष्ट हो चुकी है ।

तभी तो आज सिवाय अपने शरीरके किसी अन्यके शरीर को मानव-शरीर ही समझने और मानने को तैयार नहीं । इस प्रकार हम अपने पारस्परिक सम्बन्ध व कर्त्तव्य से दूर होते जा रहे हैं ।

अब समय आ गया है कि संसार के मनुष्य को स्वयं जीवित रहने के लिए भी मानवता के आचार विचार और व्यवहार को ग्रहण करना होगा । अब परस्पर भिन्न भेद, दूरी, वैर-विरोध और घृणा आदि को सर्वथा त्याग कर एकता समीपता समानता तथा प्रेम के आधार पर ही पारस्परिक उन्नति एवं सर्व-विकास और

सर्व-रक्षा सम्भव हो सकेगी। क्योंकि यह भाई चारे का समानता तथा एकता का युग है। अच्छा हो कि हम किसी महा विनाश से पूर्व ही अपना स्वयं कर्त्तव्य समझकर स्वयं ही बदल जाएँ। और तत्काल सम्भल जाएँ।

अन्यथा सर्व-विनाशकारी अमानवता की उठती हुई आन्धी जड़मूल से ही मानवता को सदा के लिए उखाड़ फेंकेगी। यही हमारा सर्व विनाश होगा। जिससे हम पुनः सदियों तक भी न उभर सकेंगे।

यह अवसर है कि विश्व, संसार को भाई बना और भय को भगा। सबके पास जा और आ। और मनुष्य मात्र से स्वयं सम्पर्क बढ़ा।

परन्तु इसके लिए तुम्हारे हृदय के भाव पूर्णरूप से विशुद्ध हों। जब तुम किसी के बनोगे तो दूसरा भी तुम्हारा अवश्य ही बनेगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

इस प्रकार संसार में मनुष्य बनना सच्ची शान्ति और सुख आह्वान करने का एक मौलिक साधन है।

इसीलिए 'मानव कल्याण परिषद्' ने मानवता का एवं मानव निर्माण का ध्येय अपना कर संसार का एक बहुत बडा कल्याण का कार्य किया है।

क्योंकि आज मनुष्यत्व प्राप्त करना एक बहुत बड़ी बात है। संसार में आज मनुष्य ने मानव चोला तो पा लिया, परन्तु अब मानव-जीवन में अपने आचार विचार और व्यावहारिक रूप से मानव-मन धारी भी तो बनना ही होगा।

इसके लिये जो मानवता के महान शत्रु हैं, जिनके कारण एक मनुष्य स्वतः ही दानवता की ओर प्रवृत्त होता है। अथवा उसे

किसी विवशावस्था में दानवता की शरण लेनी पड़ती है । ऐसे उन सभी मूल कारणों को सर्व प्रथम समूल नष्ट करना होगा ! ताकि प्रत्येक मानव स्वयं मानव बन सके और निरन्तर मानव भी बना रह सके । पुनः उसके पतन की कभी सम्भावना ही न हो।

यह तभी सम्भव है जबकि उसके आस पास का सामाजिक वातावरण भी तदनुकूल बना हो, जिसके लिए हमें अभी से प्रयत्न-शील होना है ।

इन सभी उपरोक्त बातों के साथ २ एक मानव को यह भी जानना होगा, कि जहां प्रायः वह जागृतावस्था में निजीस्वार्थ व लोभ के कारण ही कितने अनन्त अनर्थकारी, भयंकर पापों की ओर प्रवृत्त होता है। वहां स्वप्नावस्था में भी यह प्रवृत्ति बनी रहतीहै । और कितने ही अनन्त पाप करता रहता है जिसकी उसने कभी गणना ही नहीं की । उसे केवल मात्र स्वप्न ही समझ कर सन्तुष्ट हो रहता है । जो जीवन में एक बड़ा रहस्य छुपा है । इधर भी सचेत होकर यह जानना होगा कि एक मनुष्य कितने ही पाप जाने अनजाने में, चाहते और अनचाहे भी करता रहता है । उसका फल भी वैसे ही मिलता है जैसे जागृतावस्था में किए गये ज्ञान पूर्वक पापों के करने का । उसमें तीन मुख्य कारण हैं : १. लोभ, २. दोष, ३. कुसंस्कार । जिनका संक्षेप से वर्णन किया जाता है —

१ लोभ — सभी इन्द्रियों के विषय तथा उन सभी विषयों के भोगने की तीव्र इच्छा, जो सभी पापों का कारण है । वह जहा भी दृष्टि डालता है और जो मन में चिन्तन करता है, और बुद्धि द्वारा जो भी विचार उत्पन्न होते हैं, उन सब में सर्वत्र लोभ ही छाया रहता है । यही कारण है कि इसे सभी पापों का मूल कारण माना गया है ।

२ दोष:— नानाविध पाप कर्मों की ओर बनी ऐसी प्रवृति (अभ्यास) एवं बना ऐसा स्वभाव, जो स्वाभाविक रूप से चाहे - अनचाहे, जाने - अनजाने तथा चलते-फिरते और सोते-जागते सभी अवस्थाओं में नाना भांति के अनर्थों-अनाचारों की ओर जब मनुष्य प्रवृत्त होता है। उसके पास आंखें और बुद्धि सब रखते हुए भी, स्वयं सब ओर से आंखें मीच विवेक बुद्धि को एक ओर ताक में रख, सब प्रकार की लज्जा संकोच और भय का भी सर्वथा परित्याग कर, न किसी स्थान का ध्यान, न समय का ज्ञान, इसप्रकार सर्व प्रकारेण नितान्त अन्धेपन से जो भी पाप कर्म किया जाता है उसे 'दोष' कहा है। अर्थात् इस प्रकार सभी किये जाने वाले पाप कर्मों में प्रवृत्ति के लिए 'दोष' ही कारण है। इसका भी मूल कारण अविद्या (अन्धकार) ही है।

३ कुसंस्कार— जन्म-जन्मान्तरों में नाना-भांति के किये गये पाप कर्मों के द्वारा आत्मा पर पड़ी पाप कर्मों के कुसंस्कारों की छाप! जिन कुसंस्कारों के कारण एक मनुष्य जन्म-जन्मान्तरों तक प्राय: नाना प्रकार के पापों की ओर विभिन्न समयों एवं अवसरों में प्रवृत्त होता रहता है। जो मनुष्य पर प्राय: अकस्मात् ही यदा कदा अवसर पाकर निरन्तर आक्रमण करते रहते हैं। जिनसे कोई जागरूक विरले सर्वथा सचेत व्यक्ति (साधक) ही बच पाते हैं।

क्योंकि जिन पापों एवं कर्मों के विषय में मनुष्य प्राय: सोचता तक भी नहीं। फिर भी यह सब पाप समय पाकर बार-बार जागते रहते हैं। यह सब कहां से आते हैं ? क्यों आते हैं ? जिन पर विशेष साधक, अनुभवी व्यक्ति प्राय: सब इसका खेल देख सदैव चकित होते देखे गये हैं। और कुछ सौभाग्यशाली थोड़े ही व्यक्ति इस बात को समझ पाते हैं। जो अपने अन्त:करण से इन

जन्म जन्मान्तरों के सञ्चित कुसंस्कारों को साफ करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं, वह बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धि के लिए निरन्तर प्रयत्न करते हैं। क्योंकि वह इस बात को भलीभांति समझ चुके होते हैं कि आत्म-शुद्धि ही जीवन-शुद्धि है। वह ज्ञान और तप का आश्रय लेकर, जीवन-संयम कर, नित्यप्रति प्राणायाम की भट्ठी में तप, पुनः मन और इन्द्रिय दोषों को दग्धकर, आत्मशुद्धि में प्रवीणता प्राप्त करते हैं। जो स्वयं एक कल्याण का मार्ग है।

अब आप जरा स्वयं सोचिये ! कि मानव के बनने-बनाने में कितनी ही बाह्य और आभ्यन्तरिक अनेकों ही बाधायें आती है। इन सब बाधाओं पर मानव बनने वाला व्यक्ति जब स्वयं सर्वतः दृढ़ता के साथ सर्वथा जागरूक हो, पुनः अनेकों प्रकार जीवन-संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ विजयी होता है, तभी उसे सच्ची शान्ति मिलती है। जन साधारण इन उपरोक्त बातों पर कभी विचार तक नहीं कर पाता, और न ही कर सकता है।

अतः मानव जीवन को महत्वशाली इस लिए भी माना गया है, कि वह अपनी जागरूक बुद्धि द्वारा मानव-जीवन पर आक्रमण करने वाले नाना प्रकार के शत्रुओं से, जहां उसे बाहर से आक्रमण करने वाले शत्रुओं से अपने आपको बचाने और रक्षा का प्रश्न निरन्तर बना रहता है। वहां उसे आन्तरिक रूप से भी कितने और किस-२ प्रकार के आक्रमणों का सामना करने के लिए सदैव तत्पर रहना है। तभी मानव और मानवता की रक्षा भी भली-भान्ति सम्भव है।

अतः सारांश यह है कि मानव बनना एक सर्वथा जागरूक सचेत जीवित जागृत व्यक्ति की शक्ति पर ही निर्भर है। जो स्वयं एक महान तप है। तत्त्व वेताओं ने— 'ऋतं तपः, सत्यं तपः, दमस्तपः, शमस्तपः" आदि जो सभी तप एक साधारण मानव को उच्च- आदर्श- स्तर पर ले जाने में कारण होते हैं।

इस प्रकार एक मानव (साधक) को अभी केवल- मात्र सर्वतः सम्भलने- मात्र के लिए ही अभ्यस्त किया जा रहा है। क्यों कि मनुष्य यदि सम्भलने में अभ्यस्त हो गया तो पुनः स्वयं सर्व-रक्षा- सामग्री (साधना) भी उसके दैनिक अभ्यास से स्वतः सिद्धि के रुप में प्राप्त हो सकेगी।

जिसके द्वारा अपने आन्तरिक आक्रमणों से रक्षा करते हुए बाह्य आक्रामक शत्रुओं (पापों) से भी रक्षा सम्भव हो सकेगी। जो एक मानव (साधक) के लिए स्वयं करनी अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि "आन्तरिक जगत को बनाओगे तो बाह्य जगत भी बन सकेगा, और पुनः बसा भी रह सकेगा"।

If you want to set the world right, start with your ourself".

कोयटा में गिरजा घर पर लिखा यह एक माटो - जो वाक्य हमारा शत प्रतिशत अनुमोदन करता है। इससे यह भी स्पष्ट है कि सत्य सर्वत्र एक ही है।

यही निरन्तर चिन्तनीय बात है - एक मानव बनने के जिज्ञासु के लिए, जिसे नित्य प्रति दैनिक रूप से प्रातः सायं प्राणायाम द्वारा जीवन शक्ति सञ्चित करते रहना है। ताकि नित्य के अभ्यास से मन और इन्द्रियों के सभी दोषों का निरन्तर निराकरण करते हुए मन को वश में करना भी शनैः शनैः स्वतः सरल हो जायेगा, और आन्तरिक दोषों पर इस प्रकार निरन्तर किये जाने वाले अभ्यास से विजय भी प्राप्त होती जायेगी।

मानव जीवन में मन स्वयं एक अद्‌भुत् सबल-शक्ति है। "मन एव कारणं बन्धमोक्षयोः।" मन ही सब प्रकार के बन्धनों में फंसाने वाला और मन ही मुक्तिमार्ग को प्रशस्त करने वाला कहा है। जिसके वश में होने पर मनुष्य सर्वत्र एवं सर्व कार्यों में

सिद्ध-हस्त तथा विजयी होता है। क्योंकि "मन के हारे हार है और मन के जीते जीत।"

अतः इस बात को भी निरन्तर ध्यान में रखना होगा, कि "स्वामी पर भृत्य का प्रभावी होना सर्व विनाश का कारण होता है।" इसलिए 'तुम मन के नहीं' अपितु 'मन तुम्हारा है'। तुम तो स्वयं उसके स्वामी हो, और वह तुम्हारा भृत्य एवं सेवक है।

सर्वश्रेष्ठ मार्ग तो यही है कि मन को प्रेम, अभ्यास और विधि पूर्वक अपना बनाये रखो। 'रोको नहीं मोड़ो', इस के लिए विधि, अभ्यास और विचार पर ही निर्भर है। पुनः हम अपने निश्चय पर सर्वथा दृढ़ एवं दृढ़तर होने की आवश्यकता है। हमें मन की बात न मानकर आत्म-कल्याण के लिए अपनी ही बात मनवानी है, तभी सफलता है। किसी कवि ने मन के विषय में कहा है —

"मन लोभी, मन लालची, मन चञ्चल, मन चोर।
मन की मति मत मानिये, पलक पलक में और॥"

इस प्रकार एक साधक अपनी साधना में आगे बढ़ता हुआ १— मल (पाप कर्मों द्वारा संचित मैल), २— विक्षेप (मनकी चञ्चलता व अस्थिरता), ३— आवरण अविद्या और अज्ञान का आत्मा पर पड़ा पाप का परदा। यह तीनों मानव जीवन में साधना एवं सर्वोन्नति करने, कल्याण मार्ग के लिए आगे बढ़ने, आत्म-ज्ञान एवं आत्म निर्माण में सर्वथा एवं सर्वत्र बाधक हैं। अतः इन उपरोक्त तीनों को अपने निर्मित होते जीवन से सदैव दूर रखियेगा।

वास्तव में तत्वज्ञान में अन्तःकरण की शुद्धि ही मूल कारण है। अतः शुद्धि के लिए अर्थात् तत्वज्ञान प्राप्ति के लिए मल, विक्षेप और आवरण क्रमशः इन तीनों दोषों को दूर करना जरूरी

है। जैसे अपनी आकृति स्पष्ट दिखाई देने के लिए शीशा साफ हो, वह हिलता भी न हो और उस पर कोई परदा भी न पड़ा हो, तभी आत्म दर्शन होता है। जिसका होना अपने सभी कर्मों की शुद्धि के लिए नितान्त आवश्यक है।

यदि आप अपने प्रति इस प्रकार कर्त्तव्य कर्म में सफल हो जाते हैं, तो आत्म-साक्षात्कार (आत्म-ज्ञान) तो निश्चित है ही। इतना ही नहीं! पुनः परमात्मा साक्षात्कार भी सर्वथा सम्भव है। जो एक मानव का अन्तिम लक्ष्य है।

परन्तु इस मार्ग पर चलने वाले पथिकों के लिए मार्ग के सम्बन्ध में यह बात सर्वथा स्पष्ट है कि "क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्या" कहा है। अर्थात् "यह मार्ग छुरे की तेज धार पर चलने के समान कठिन और कठोर है।" जिस पर चलना किसी विरले ही माई के लाल का काम है। परन्तु इस पर चले बिना कल्याण भी तो नहीं।

यह साधना निर्माण एवं योग का एक लम्बा तथा प्रत्येक के लिए गहन विषय है। इसलिए विस्तार भय से यहां संक्षिप्त रूप में और संकेत मात्र ही लिखा गया है। जो निर्माण से निर्वाण तक आगे बढ़ने में मौलिक कारण है।

★

# मानवता के तीन महा-शत्रु

(१) अविद्या (२) अभाव (३) अन्याय ।

जब तक इन तीनों को निजी अपने जीवन से एवं मानव समाज से सर्वथा निष्कासित नहीं कर पाते— तब तक न मानव-जीवन का निर्माण हो सकता है और न मानव समाज का ही। क्योंकि मानव-जीवन के निर्माण के लिए उसके आसपास का सामाजिक - वातावरण भी तदनुसार उसके अनुकूल होना भी अत्यावश्यक है । इस प्रकार समाज से व्यक्ति को और व्यक्ति को समाज से किसी भी अवस्था में एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता । क्योंकि इन दोनों का परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । इसलिए समाज से व्यक्ति का और व्यक्ति से समाज का निर्माण होता है ।

अतः उपरोक्त तीनों का व्यक्ति व समाज से जितना-२ विनाश होता जाएगा उतना-२ ही संसार से दानवता का विनाश होकर सवसुख-शान्ति एवं समृद्धि का वातावरण उत्पन्न होता जाएगा ।

क्योंकि संसार भर के जितने भी पाप हैं ! अथवा जिनको पाप नाम से सम्बोधित किया जाता है । वह सब इन उपरोक्त तीनों के कारण ही उत्पन्न होते हैं । अर्थात यह तीनों ही स्वयं महा-पाप हैं । जिनसे अत्याचार, अनाचार, पापाचार, व्यभिचार और सर्व भ्रष्टाचार आदि सभी पाप उत्पन्न होते हैं ।

## (१) अविद्या

मनुष्य बनने का सर्व प्रथम साधन अविद्या (अज्ञानता) रूपी अन्धकार को सर्वथा दूर करना और ज्ञान रुपी प्रकाश को प्राप्त करना है । क्योंकि अविद्या तथा अन्धकार तो स्वयं मृत्यु के प्रतिनिधि हैं । फिर अन्धकार में मनुष्य तो रह भी नहीं सकता !

हां ! उल्लू जो अन्धकार प्रिय है, वह अवश्य रह सकता है। अपितु अन्धकार में कुछ सूझता ही नहीं, जिसके कारण सब क्रियाएँ एवं चेष्टाएँ स्वतः अवरुद्ध हो जाती हैं ।

अब विचारणीय बात यह है कि एक मनुष्य अशुभ कर्म क्यों करता है? इसी लिए कि उसे शुभ अशुभ कर्म का कोई ज्ञान ही नहीं

इसके सम्बन्ध में कई व्यक्ति भ्रम से ऐसा भी तो कथन करते हैं, कि कोई जान बूझ कर जो अशुभ कर्म करते है वह क्यों करते हैं ? उन्हें तो ज्ञान है ही, नहीं कदापि नहीं।

क्योंकि जब तक उसे ज्ञान है, वह अशुभ कर्म से सर्वथा बचता ही रहता है। और जिस समय कोई भी व्यक्ति अशुभ कर्म करता है तो वह अविद्या और अन्धकार के गहरे गढे में पड़ कर किसी अशुभ कर्म की ओर प्रवृत्त हौता है।

सारांश यह है कि ज्ञान से सदैव शुभ कर्म होते हैं, और अज्ञान से पाा अथवा बुरे।

जगत् में मनुष्य योनि को सब से उच्च योनि कहा गया है। बह इसी लिए कि वह कर्म योनि है। इसके अतिरिक्त सब प्राणी-मात्र की भोग योनि है; जिसको प्रत्येक शुभाशुभ कर्म का फल भोगना अवश्यम्भावी है। इसे कर्म-फल भोगना ही पड़ेगा बच नहीं सकता।

अतः एक व्यक्ति के जो भी कर्म हों वह सब ज्ञान पूर्वक होने चाहियें। अविद्या और अन्धकार की पट्टी बांध कर नहीं ।

आज जो व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप के ज्ञान के अभाव में जो भी कर्म करता है, उसके कारण ही प्रतिदिन एवं प्रतिक्षण पाप कर्म की ओर ही प्रवृत होता है, जिसमें अविद्या (अज्ञानता) ही एकमात्र कारण है ।

आत्म-बोध में, कर्म-अकर्म में, जब एक मनुष्य किंकर्त्तव्य-विमूढ होता है, तब अविद्या ही उसमें एकमात्र कारण होती है। इसीलिए जब तक मनुष्य में अविद्या है, अज्ञान है, वह बुद्धि से अपने हिताहित पर विचार ही नहीं कर सकता। फिर उसके अन्तःकरण में पाप-पुण्य कर्मानुभूति तथा मनन शक्ति की योग्यता उत्पन्न ही नहीं होती। ऐसी स्थिति में उसे आत्मिक ज्ञान का प्रकाश मिलना तो नितान्त असम्भव है।

कुछ व्यक्ति केवलमात्र किताबी ज्ञान को ही विद्या समझकर अपने आपको सुयोग्य, अनुभवी, विद्वान् तथा एक बड़ा व्यक्ति समझ लिया करते हैं। यह उनका एकमात्र भ्रम है। पुनः ऐसे व्यक्तियों को यदि कोई उपाधि मिल जाये अथवा इससे अधिक कोई अधिकार ही प्राप्त हो जाये तो वह अपने आपको सर्वथा सफल ही समझ लिया करते हैं। क्योंकि उन्होंने जिस दृष्टिकोण के अनुसार अथवा जिस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्हें शिक्षा मिलती है तदनुसार वास्तव में वह सफल ही हैं। क्योंकि वह विद्या अथवा ज्ञान इसी को समझते हैं, और उन्हें अब तक यही बतलाया गया और यही समझाया गया है। यह इनका अपना अपराध नहीं हैं।

यह ठीक है—आप इसी से समझ लें, कि किताबी ज्ञानमात्र से एक व्यक्ति का कितना मूल्य बन गया, और उससे उसका कुछ बौद्धिक विकास भी हुआ, और मन और बुद्धि में कुछ सोच विचार का मादा भी उत्पन्न हुआ।

परन्तु ज्ञात हो कि यह पुस्तक-अक्षर-ज्ञान से प्राप्त ज्ञान उस आन्तरिक और वास्तविक ज्ञान-सृष्टि के लिए साधन अवश्य है, जो होना ही चाहिये। परन्तु यही ज्ञान नहीं है।

क्योंकि आज जगत में सर्वत्र अनपढ़, मूर्खों के मुकाबले में पढ़े-लिखे मूर्खों की कमी नहीं है, जो हमारे लिए एक दुर्भाग्य की

बात है । अपितु कई तो उन अनपढ़ मूर्खों को भी लांघ गये होते हैं जो नाना भान्ति के छल, कपट, धोखा, ठगी आदि अन्यान्य कितने ही पाप करते हैं बेचारे अनपढ़ क्या करेंगे ? ऐसे पढ़े लिखे कितने ही पढ़े लिखों के कान काटते हैं ।

अपितु जितना पाप आज विवेक-हीन पढ़े लिखे करते हैं, अनपढ़ नहीं करते, न कर ही सकते हैं । इसी से समझना चाहिये कि क्या यह विद्या है ? नहीं !

यही कारण है कि उनकी शिक्षा तलवार की भांति आत्म-रक्षा का कारण न बनकर अपने ही आत्म-घात का कारण बनती है । इससे यह भी भलीभान्ति स्पष्ट हो जाता है कि जिस विद्या के कारण उनका अपना शुद्धाचार-विचार और व्यवहार भी न बनकर केवल मात्र उनके आत्म-घात का कारण ही बनती है । वह ऊचे से ऊचा साहित्य पढ़ कर नाना भांति की उपाधियों की प्राप्ति तो केवल मात्र बौद्धिक ज्ञान मात्र के लिए ही है ।

वास्तविक-ज्ञान अथवा विद्या तो जीवन-बोध अथवा आत्मिक-ज्ञान या कर्त्तव्य-बोध ही समझना चाहिये । जिससे प्रत्येक हिताहित का पूर्ण ज्ञान हो जाता है । और उससे आत्मिक-शान्ति भी स्वतः मिलनी आरम्भ हो जाती है । उसके सम्मुख सब स्पष्ट हो जाता है । वह कि कर्त्तव्य-विमूढ़ नहीं रह सकता । वह कभी असमञ्जस में पड़ा नहीं रहता । उसके जीवन में ज्ञान का प्रकाश अथवा दीपक-चैतन्य हो जाता है । और पुनः इसी प्रकाश में ही उसे सुख और आनन्द की अनुभूति भी होती है ।

पुनः अक्षर-बोध में जो ज्ञान का आभास-मात्र होता है वह केवल चंचल प्रकाश अथवा उस ज्ञान की छटा मात्र ही है । स्थिर ज्ञान का प्रकाश तो उसी समय होता है जब मनुष्य क्रियात्मक रूप से उस प्राप्त ज्ञान के अनुसार कर्म करे । बिना

कर्म के ज्ञान का प्रकाश स्थिर नहीं होता। जब ज्ञान अनुभव में आगया, कर्म में आगया तब विद्या या प्रकाश स्थिर हुवा। और प्रकाश में ही वास्तविक रूप से कर्म होता है। अन्धकार में कर्म नहीं कुकर्म होता है, चेष्टाएँ और यत्न करते भी कर्म बिगड़ जाते हैं।

अतः शुभाशुभ कर्म का वास्तविक ज्ञान प्रकाश में ही होता है अन्धकार अथवा अविद्या में नहीं।

जिस समाज या राष्ट्र में ज्ञानी लोग ऊंचे आचार विचार के व्यक्ति जितने भी अधिक होंगे, उतना ही वह देश तथा समाज भी उन्नत होगा। वहीं सब प्रकार का सुख होगा, और स्थिर शान्ति का वातावरण भी उत्पन्न हो सकेगा।

और जहां अज्ञानियों के झुण्ड होंगे ! वहां किसी प्रकार की शान्ति और सुख नाम के लिए भी उत्पन्न नहीं होंगे। अतः सुख और सच्ची शान्ति का कारण विद्या है। अर्थात् अन्तः-चक्षु का खुलना ही विद्या है, बोध है, ज्ञान प्राप्ति अथवा वास्तविक प्रकाश का मिलना है।

वास्तव में कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का ज्ञान तथा कर्त्तव्य कर्म की वास्तविक सूझ ही विद्या द्वारा सम्भव है अविद्या से नहीं।

मनुष्य समाज़ में जितनी भी अशान्ति और दुःख है, उसकी जड़ अविद्या ही है।

जब तक व्यक्ति को सत्यासत्य, भलाई बुराई तथा उसके परिणामों का ज्ञान ही न हो तो वह नाना भान्ति की बुराइयों के अतिरिक्त और क्या करेगा ?

जिस समाज या देश में इस प्रकार की जनसंख्या अधिक होगी उतना ही वह देश या समाज निरन्तर दुःखी रहेगा चाहे

उसके सम्मुख संसार की सब सुख-भोग की सारी ही सामग्री भी क्यों न जुटा दी जाये, वह कभी लाभ प्राप्त न कर निरन्तर हानि ही उठाता रहेगा।

जो लोग सांसारिक भोग सामग्री को सुख तथा शान्ति का कारण समझते हैं, वह उनका केवल भ्रम मात्र है। अपितु अविद्या ही दुःख और अशान्ति का कारण है। इतना ही नहीं, अविद्या ही एक मात्र सब प्रकार के अभाव और अन्याय की भी जननी है।

अतः बिना वास्तविक आत्मिक-ज्ञान प्रकाश के न अभाव ही दूर होगा ! न अन्याय ही !

इसलिए मानवता का प्रथम शत्रु अविद्या है, अज्ञान है। जिसके लिए मानव-कल्याण परिषद् को अपनी पूर्ण शक्ति जुटा देनी होगी, तभी अभाव और अन्याय की जड़ें भी कट सकेंगी।

इसके लिए शिक्षा काल एवं बाल्य-काल के आरम्भ से ही शुद्धाचार-विचार की शिक्षा तथा ऐसा ही अनुकूल वातावरण उत्पन्न करना होगा।

अतः इसके लिए दैनिक बाल क्लब, बड़े २ विशाल शिविर महा सम्मेलन गोष्ठी आदि सब साधन रूप में उपयोगी सिद्ध हो सकेंगे। जिनके द्वारा आरम्भ से ही आमूल चूल परिवर्तन हो सके।

२५ - ३० वर्ष तक के सब युवकों पर शिविरों का एक चमत्कारिक और ठोस प्रभाव देखा और अनुभव किया गया है।

अतः यह परिषद् इस अविद्या रूपी घातक शत्रु के प्रहार से सर्व प्रकारेण बचने बचाने के लिए, बौद्धिक-शिक्षण, शिविर, जन सम्पर्क कला, अच्छे साहित्य के लिए विशेष पुस्तकालय, विचार-धारा गोष्ठी सत्संगादि का क्रम, बड़े छोटे सभी प्रकार के नाना-भान्ति के सम्मेलन आदि प्रचार के विभिन्न साधनों को अपनायेगा।

२. अभाव— मानवता का दूसरा शत्रु अभाव है।

जहां अभाव मानव की सब प्रगति में एक बड़ी बाधा है, वहां मानव-समाज की सब सुख, संम्पत्ति, उन्नति और विकास के लिए एक बड़ी रुकावट है। क्योंकि शरीर भी तो भौतिक है अतः इसकी रक्षा के लिए भौतिक साधन भी तो जुटाने ही होंगे। कम या अधिक, यह एक अलग बात है।

स्मरण रहे ! यह सब साधन हों, भोग न हों, क्योंकि भोग-विलास से ऐन्द्रिक सुखों में फंसना है। इसलिए भोग विलास से और पुनः उसके विकास से आत्मिक-उन्नति सर्वथा रुक जाती है। क्योंकि भोग और रोग समान ही तो हैं।

यह साधन उसी समय भोग बन जाते हैं, जब मनुष्य उन्हें साधन रूप में प्रयोग न कर, उन में फंस कर साधन को ध्येय समझ कर इन्द्रिय-सुख को आत्मिक सुख समझने लगता है।

क्योंकि ध्येय समझने पर तो इनके लिए अनेकों ही पाप होंने लगेंगे। जैसे वर्त्तमान काल में होते हैं या हो ही रहे हैं। अतः शिक्षा, भोजन, वस्त्र, घर, स्वास्थ्य एवं अन्य रक्षा साधन आदि यह सब नितान्त आवश्यक वस्तुएँ हैं।

समाज के प्रत्येक व्यक्ति को जब तक इन सब की आवश्यकता पूर्त्ति के लिए साधन मिलते रहते हैं, तब तक तो उसमें कुछ शान्ति बनी रहती है।

अन्यथा अभाव एक ऐसी भयंकर क्रान्ति उत्पन्न करता है, कि जब बड़ी से बड़ी शक्ति भी उस पर नियन्त्रण रख पाने में सर्वथा अयोग्य और असमर्थ सिद्ध होती है।

भला जिस समाज के लोग भरपेट भोजन, अपने शरीर को ढकने के लिए वस्त्र तक भी प्राप्त न कर सकें, और पुनः उस

समाज का एक भाग उसके साथ ही प्रत्येक प्रकार के साधनों से सम्पन्न हो, सब प्रकार प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में आनन्द मौज उड़ावे।

कितना ही अन्न जो यदि ठीक प्रकार ध्यान पूर्वक बर्त्ताव में लाया जावे तो कितनों का ही पेट भर जाये। कोई भी भूखा न मरे। परन्तु प्रमाद-वश कितना ही खाद्य-पदार्थ व्यर्थ जाता हो, अथवा जमा करके अपनी कोठियों में बन्द रखा जाता हो, पुनः ऐसे अवसर की ताक में रहे, जब कि उससे पूरा तो क्या, चौगुना बनाया जाय। ऐसे समय में यदि भूखी नंगी जनता किसी बुरे व्यवहार के लिए उतर आए, तो क्या वह सोच सकेंगे ? मानव का और मानव समाज का हित ! कदापि नहीं।

वह जी भर कर उन सम्पत्ति शाली लोगों के लिए जो भूखों और नंगों को देख मौज उड़ाते हों ! क्या चैन से सुख का श्वास मात्र भी ले सकेंगे ? कदापि नहीं !

क्योंकि संसार में भूखा क्या पाप नहीं करता ? जिसका केवल मात्र उद्देश पेट-पूर्त्ति हो जाता है, वह जगत् में कौन सा पाप नहीं कर सकता ? उनमें से दया और करुणा भाव सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। और वह बड़े से बड़ा अन्याय भी कर बैठता है। जिसे सुन एक व्यक्ति स्वंय रोमांचित हो जाता है।

जिन सम्पत्ति-शाली लोगों ने नंगे और भूखों के प्रति कभी सहायता तथा किसी समय पड़े पर कोई सहानुभूति तक प्रगट नहीं की। यह एक बड़ी भारी अमानवता है। जिसके कारण अन्य पड़ौसियों में भी अमानवता का प्रचण्ड-रूप स्वयं जाग उठता है। जो कि एक महान पाप है ! जो वह लोग करते हैं। और दूसरों की कोई किसी भी अवस्था एवं किसी भयंकर स्थिति में दूसरों को

कुछ भी नहीं देते। ऐसे लोग स्वयं भोजन नहीं खाते, वह पापी पाप ही खाते हैं। ऐसे लोगों को पाप की मूर्त्ति कहा जाय तो भी थोड़ा है।

जहां समानता अन्य कार्यों में होनी चाहिये वहां सर्व प्रथम खान-पान, रहन-सहन, आचार और व्यवहार में सामाजिक रूप से अवश्य ही होनी चाहिये।

यदि इन कार्यों में समानता न होगी तो विषमता तो स्वयं ही हो जायेगी। जिसके कारण अमानवता को उभरने का अवसर मिलता है।

अतः जहां अन्य बातें समान हों, वहां हमारे भोज्य पदार्थ भी समान ही होने चाहियें। जो व्यक्ति गिद्ध के समान अन्यों के मांस पर पुष्ट होने की इच्छा करते हैं। वास्तव में ऐसे मानव क्या समझेंगे मानवता को !

स्थान २ पर आज़ सर्वत्र देश देशान्तरों में जो साम्यवाद का नारा लगाया जाता है तो क्या यह इस प्रकार का साम्यवाद किसी प्रकार से भी शान्ति का कारण बना ? कदापि नहीं। सो क्यों ? जहां तोड़ फोड़, मार काट, अग्नि काण्ड हो, ऐसा यह सब ही स्वयं एक प्रत्यक्षरूप में अमानवता एवं असमानता का रुद्र रूप है। पुनः वहां शान्ति की आशा ही क्या ?

क्योंकि इस सब का एक मात्र इलाज और शान्ति तो अविद्या के सर्व विनाश के साथ अभाव को नष्ट करने में ही है। पुनः ऐसी अवस्था में तीसरे महापाप अन्याय को संसार में कहीं भी स्थान तक न मिल सकेगा।

अन्ततः अभाव का वास्तविक हल ( समाधान ) क्या है ? सर्व प्रथम आस्तिक भावना के साथ २ शुद्धाचार-विचार तथा

स्वावलम्बन और आत्मनिर्भरता के साधनों को अपनाते हुए, अविद्या से ऊपर उठ कर ही अभाव को सर्वथा दूर किया जा सकता है।

कोई भी व्यक्ति बैठ कर न खाय, सिवाय रोगी, वृद्ध और बालक के। सब मनुष्य अपना कर्त्तव्य समझ कर स्वावलम्बन के साधनों को क्रियात्मक रूप में अपनावे, चाहे उसके पास कितनी ही धन सम्पत्ति भी पास में क्यों न हो ! उसे कोई न कोई आत्म-निर्भरता का साधन अवश्य ही अपनाना चाहिये ।

इस प्रकार प्रत्येक घर नानाविध कला कौशल का घर हो ? और प्रत्येक व्यक्ति जहां ईश्वर भक्त हो, वहां वह किसी न किसी एक कला कौशल के ज्ञान से भी सर्वथा सम्पन्न हो । वहां स्वतः ही मानवता का एक विशुद्ध वातावरण उत्पन्न हो जायेगा। ऐसे व्यक्तियों के जीते जी न कोई भूखा मर सकता है और न कोई नंगा ही रह सकता है।

कई देशों में वर्त्तमान समय में प्रायः यह देखने में आया है कि वहां के निवासी एवं प्रायः युवक वर्ग कुछ न कुछ स्वावलम्बनार्थ कला कौशल में काफी अभ्यस्त एवं योग्य होते हैं। वहां प्रायः कोई भी युवक नोकरी करने का अभिलाषी नहीं होता अपितु अपने हाथों से काम करके खाना अच्छा समझते हैं। फिर कई देशों में इससे भिन्न ही वअस्था है। जहां का युवक वर्ग अपने हाथों से काम करना अपना मान ही नहीं समझता अपितु हाथ से काम करने को अपना अपमान ही समझता है। ऐसे लोग नौकरी को अधिक महत्व देते हैं। पुनः युवावस्था में भी माता पिता पर भार बनकर जीवन-यापन करना अच्छा समझते हैं परन्तु कोई कार्य करना नहीं। ऐसी स्थिति में उन देशों के लोग किस प्रकार अपने अभाव को दूर कर सकेंगे ?

क्या नौकरी भी कभी अभाव को दूर कर सकती है ? पुनः आराम का जीवन यापन करना तो स्वयं अपने सुखों की जड़ों को काटना है।

पुनः सुख-शान्ति, विकास, उन्नति तथा प्रगति किस आधार पर हो ? इसके लिए महान पुरुषार्थ को जगाओ ! और अभाव को दूर भगाओ ! यही भावना, सबसे सर्व अभाव को दूर करने में कारण बन सकती है। पुनः आत्मनिर्भरता ही अभाव को मूलतः समाप्त कर सकेगी। जिसके लिए यह संगठन विविध प्रकार के गृह-उद्योग, नाना भान्ति के कला-कौशल तथा अन्यान्य औद्योगिक कार्यों में बढ़ोतरी देगा।

क्योंकि जब तक प्रत्येक व्यक्ति किसी भी हस्तकला को नहीं जानता, मूलतः अभाव दूर नहीं हो सकता। और यह वर्त्तमान दुःख सदा बना ही रहेगा।

अतः स्वावलम्बन एवं आत्मनिर्भरता के लिए कला-कौशल, गृह-उद्योग एवं हस्त-कला आदि साधनों को तत्काल अपनाना होगा।

एक मौलिक बात — जो सब पापों को जड़ मूल से समाप्त करेगी, वह है एक मात्र, विशुद्ध एवं निष्पक्ष मानवता की विचार धारा से युक्त शुद्धाचार विचार तथा विशुद्ध सामाजिक वातावरण तथा परस्पर सद् भावना से सद् व्यवहार का प्रशिक्षण जो अविद्या, अभाव और अन्याय को समूलतः नष्ट करने में मौलिक साधन है।

क्योंकि सर्व साधन सम्पन्न होते हुए भी प्रायः लोगों को अधिक से अधिक पापों को करते देखा गया है। वैसे संसार की सब प्रकार की सुख सामग्री उनके पास है परन्तु विशुद्ध आचार-विचार-धारा और विशुद्ध-वातावरण न मिलने के कारण ही उनसे सब पाप होते हैं, और करते देखे गये हैं।

तनिक संसार के सम्पत्ति-शाली रास्ट्रों की ओर तथा सम्पत्ति-शाली व्यक्तियों की ओर देखो ! जिससे यह सब स्वयं दृष्टि-गोचर होगा कि भौतिक-साधन ही सब कुछ नहीं ! नहीं तो सर्वत्र सुख और शान्ति का निरन्तर ही वातावरण होता !

(३) अन्याय

किसी के अधिकारों को दबाना, छीनना या अनुचित-व्यवहार करना सबसे बड़ा अन्याय है । अतः मानव-समाज का तीसरा शत्रु अन्याय ही है ।

वास्तविक रूप में यह स्वाभाविक ही है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति शक्ति में, योग्यता और बुद्धि में समान नहीं होता । कुछ न कुछ प्रत्येक व्यक्ति के गुणों में अन्तर अवश्य ही होता है ।

काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि भी मनुष्य में होते हैं । जब इन गुणों से किसी एक का भी शक्ति के साथ योग हो जाता है, तो वह व्यक्ति आस्तिकता और मानवता की पवित्र विचार-धारा से शून्य अवस्था में अन्याय के लिए प्रोत्साहित होता है । और अपने से दुर्बल, अयोग्य और कम बुद्धि वाले व्यक्ति को अपना शिकार बनाता है ।

इस प्रकार सबल-व्यक्ति निर्बल व्यक्तियों के, और सबल राष्ट्र निर्बल राष्ट्र के अधिकारों को छीनने की कुचेष्टा करता है । ऐसी अवस्था में सुख तथा शान्ति कहां ? और कैसे रह सकती है?

संसार में समाज तभी सुखी रह सकता है, जब प्रत्येक व्यक्ति समानता से सबके अधिकारों की रक्षा करे । जहां व्यक्ति को अपनी उन्नति और विकास के लिए अपने अधिकारों के भोग करने का समान अवसर तथा समान सा धन उपलब्ध हो । इस नियम को भंग करते ही एक समाज अथवा राष्ट्र और व्यक्ति की शान्ति भंग हो जायेगी ।

यदि किसी भी कार्य करने से पूर्व इस में किसी की हानि तो नहीं ? ऐसा विचार कर अन्य के लाभ में अपना लाभ समझें, तो फिर अन्याय कौन और किस पर हो सकता है ?

अतः परिषद् की विचार-धारा के अनुसार "जीवो और जीने दो" की भावना से ही जगत् में सर्वत्र सच्ची शान्ति और वास्तविक सुख की प्राप्ति हो सकती है। क्योंकि यहां सब मानव-जगत् के मनुष्य मात्र के लिए "कोई छोटा बड़ा नहीं परस्पर सब समान भाई भाई हैं, मिलकर सौभाग्य के लिए आगे बढ़ो" ! का सदैव संदेश मिलता है।

★

# एक अटल-धारणा

हमारा यह केवल विश्वास ही नहीं ! अपितु एक अटल धारणा है। कि मानवता का यह मिशन संसार की वर्त्तमान अवस्था में पारस्परिक-विद्वेष भावना, अशान्ति, अविश्वास, आशंका और सर्व-विनाशक साधनों की संरचना तथा विविध प्रकार से उनके प्रयोगों एव उन सभी भयावह योजनाओं के लिए एक वास्तविक समाधान तथा उपरोक्त सभी के समाप्त करने में एक अमोघ-अस्त्र सिद्ध हो सकता है।

समुद्र में नदियों की भान्ति सब की समानता और एकरूपता द्वारा जिससे संसार के मानव-मात्र को सच्ची शान्ति और स्थायी सुख उपलब्ध हो सकेगा, वहां इस प्रकार यह मानवता का ऊंचा-मिशन जगत् के केवल मानव-मात्र के लिए ही नहीं, अपितु प्राणी मात्र के लिए वास्तविक रूप में कल्याण कारी सिद्ध हो सकेगा।

क्योंकि मनुष्य मनुष्यता के नाते परस्पर मिलकर समीपता में जा और आकर, अपने सम्पर्क एवं ऊंचे आचार-विचार और विशुद्ध व्यवहार द्वारा सर्वत्र-मानवता का क्रियात्मक-रूप से संचार तथा प्रसार कर सकता है।

पुनः इस प्रकार एक ऐसा नव-युग निर्माण किया जा सकता है, जबकि मानव मानव के प्रति स्वयं सब प्रकार के पारस्परिक भेदभाव को मिटा, अपने कर्त्तव्य का पालन करता हुआ, जीवन के वास्तविक ध्येय को प्राप्तकर शान्ति और कल्याण को प्राप्त कर सके।

जहां पुलिस, सेना तथा नाना प्रकार के शास्त्रास्त्र एवं अन्यान्य सर्व-रक्षक समझे जाने वाले साधनों की, जिन्हें आज के

युग में एक अत्यावश्यकीय साधन समझा जा रहा है। उन सबकी आवश्यकता ही न रहेगी। क्योंकि मानवता की रक्षा एवं सेवा के लिए किसी शस्त्र की आवश्यकता ही नहीं। शस्त्र तो स्वयं भय और दुर्बलता का सूचक है।

आज जो शक्ति तथा धन इन सब पर और अन्यान्य तत्-सम्बन्धित साधनों पर व्यय किया जा रहा हैं। पुनः वह सभी शक्ति सीधी मानव-समाज के निर्माण, उत्थान, सुधार और सर्व-कल्याण के लिए व्यय की जा सकेगी।

क्योंकि जब सृष्टि का प्रत्येक व्यक्ति ही स्वयं सच्चा मानव बन गया, तो प्रत्येक का प्रत्येक के साथ एक पवित्र सम्बन्ध बन गया और जो स्वतः एक दूसरे का रक्षक ही बन गया। ऐसी स्थिति में पुनः डर किसको और किसका ? न पाप होगा न पापी ?

फिर यह सब न्यायालय, न्यायाधीश, जेल खाने, वकील और यह सब पुलिस, सेना, शस्त्रास्त्र तथा शस्त्रास्त्रों के कारखाने आदि सब व्यर्थ सिद्ध होंगे। तो इन सब पर व्यय होने वाला जो सब धन भी बचेगा, पुनः वह सब मानव-समाज-निर्माण सेवा आदि में सभी जन-धन-शक्ति लगाई जा सकेगी।

पुनः शस्त्र तो एक लाचारी में क्षणिक-साधन है, जिसे हम आपद्-धर्म कहते हैं, अथवा ऊंचे साधनों के अभाव में ही इन सबकी आवश्यकता अनुभव होती है।

यह खेद की बात है कि आज संसार में जितना पैसा एवं सभी शक्ति इन नाना भांति के उपरोक्त साधनों पर पुनः विनाश के लिए जो सभी व्यर्थ व्यय हो रही है। उतनी सृष्टि भर के मानव मात्र के जीवन-निर्वाह के लिए भी नहीं हो रही !

ऐसा न होने पर फिर क्या संसार का कोई भी व्यक्ति आज अपने हृदय पर हाथ रख कर विश्वास के साथ यह कह सकता है ? कि उसकी सर्व प्रकारेण स्वरक्षा है और वह निश्चिन्त है ? उसे किसी से किसी भी प्रकार का कोई भय ही नहीं है। ऐसा कदापि कह ही नहीं सकता।

जब इतना सब कुछ होने पर भी एकमात्र डर और दिनरात की चिन्ता तक भी दूर न हो पाई, तो हुआ न यह सब व्यर्थ और गलत साधन ? क्योंकि यह सब उचित एवं आवश्यकीय साधन ही नहीं, कि जिसके बिना कोई कार्य-सिद्धि ही न हो सके।

यह ठीक है, क्षात्र-बल भी एक बल है। परन्तु ब्राह्म बल इससे कहीं अधिक बहुत ऊँचा और बड़ा बल है, जिसके विषय में यहां तक कहा है कि "धिक् बलं क्षात्रबलम् ब्रह्मबलं बलम्।" ब्राह्म-बल का अर्थ दुर्बलता नहीं हैं।

पुनः संसार में कोई भी व्यक्ति यह कहे बिना न रहेगा कि यह सब वर्त्तमान में रचे सभी साधन केवल मात्र अस्थायी और वह भी क्षणिक रुकावट के लिए ही हैं। क्योंकि भय और दण्ड से किसी पापी के पाप को कुछ देर के लिए ही दबाया या रोका जा सकता है। उसे सर्वथा समाप्त नहीं किया जा सकता। फिर रुकावट भी कुछ देर के लिए, वह भी स्थायी नहीं !

क्या आश्चर्य है ! संसार भर के प्रायः अधिक व्यक्ति इन साधनों पर ही पूर्ण विश्वास रख कर अपने आपको स्वयं एक झूठा आश्वासन मात्र दे रहे हैं। जबकि वह सब साधन, जो अब तक अपनाये गये और निरन्तर ही अपनाये जा रहे हैं, वह सभी निरर्थक सिद्ध हो चुके हैं अपने स्वरूप में। फिर मानव और मानवता के लिए जिसके लिए उन सब का निर्माण किया गया!

और यह सब देखते हुए भी अन्य साधनों की खोज क्यों नहीं की जाती ? जिनके द्वारा मानव-समाज की स्थायी रक्षा तथा उस को स्थायी सुख और शान्ति प्राप्त हो सके। फिर सभी का मस्तिष्क इस विनाशकारी एवं गलत मार्ग की ओर ही क्यों जा रहा है ? इसमें "विनाशकाले विपरीत बुद्धि:" ही कहना उचित रहेगा । अथवा जिसे केवल मात्र भेड़ा-चाल के अन्य कुछ भी सार नहीं ।

इसलिए वर्तमान समय में हम इन मानवता के सर्व-विध्वंसकारी सभी रचे गए और निरन्तर रचे जा रहे विनाशक साधनों को पृथ्वी तल से सर्वथा समाप्त करना, जगत की स्व रक्षा और कल्याण के लिए अत्यावश्यकीय समझते हैं । फिर इसके स्थान पर मानवता की सर्व प्रकारेण रक्षा करना भी परमधर्म समझते हैं । क्योंकि मानवता की रक्षा में जगत रक्षा, और विनाश में सर्व-विनाश मानते हैं। यह एक नग्न सत्य है ।

क्योंकि मानवता स्वयं एवं उसका एक अनन्य भक्त स्वत: ही अनन्त शक्तियों का भण्डार है । जिसका अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता । जहां उसके पास अदम्य साहस, उत्साह, मानसिक बल, बौद्धिक शक्ति और आत्म शक्ति का भण्डार है। पुन: वहां उसके पास मानवता रूपी एक अदभुत् चमत्कारिक अमोघ-अस्त्र भी तो हैं।

जिसके प्रयोग के लिए हमारे पास नाना प्रकार की योजनाएँ हैं, विश्व भर में उसके प्रयोग करने पर जितना २ वह फैलता जायेगा उतना २ ही मानव-समाज के लिए स्थायी-शान्ति का वातावरण उत्पन्न होता जायेगा ।

इस अमोध-अस्त्र के प्रयोग का यह सर्वथा उचित अवसर है। जिसका संसार-भर के मानव-समाज पर एक व्यापक-प्रभाव

हुए बिना रह नहीं सकता। इस अवसर की वास्तविकता को हम भली भान्ति समझते हैं।

पुनः समय २ पर ऐसे अनेकों ही महापुरुष उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने मानवता के इस अमोघ-अस्त्र की शक्ति का प्रयोग कर मानव-समाज के मन और मस्तिष्क के कांटे को ही बदल दिया। इस प्रकार हम भी तो आज त्याग और तप की भट्ठी में तप यह सब बदल सकते हैं। अकेले न सही तो एक संगठित शक्ति के रूप में ही सही।

यदि राम युग था! और सत युग भी था! तो आज यह सभी बातें पुनः भी दोहराई जा सकती हैं। क्योंकि हमारा लक्ष्य ही मानव-समाज का आमूल चूल परिवर्त्तन एवं नव-निर्माण कर एक नव-युग लाना है। जिसके लिए हम कटि बद्ध हैं। और जिस पर हमारा एक अडिग विश्वास और अचल दृढ धारणा बन चुकी है। जो सभी सम्भव है।

जिस प्रकार विचारों द्वारा एक बालक को माता पिता तथा गुरुजनों के प्रति कर्त्तव्य पालन की शिक्षा एवं दीक्षा दी जाती है। भाई का भाई के साथ तथा बहिन और अन्य कुटुम्बियों और सम्बन्धियों के साथ सब सम्बन्ध बताया और जताया जाता है। ठीक इसी प्रकार स्त्री पुरुष के सम्बन्ध तथा परस्पर व्यवहार के लिए सभी शिक्षा दी जाती है। अर्थात् जैसे प्रारम्भ से ही यह सब विचार भरे जाते हैं, पुनः मनुष्य शनैः २ वही धारणा बना इन उपरोक्त सभी के साथ उसी प्रकार का व्यवहार करता और प्रत्येक के प्रति जो भी और जैसा भी दृष्टिकोण उसका बना है, तदनुसार वह सभी के साथ वैसा ही व्यवहार करता और सभी को वैसे ही देखता भी है।

ठीक इसी प्रकार एक मानव का मानव-मात्र के प्रति सम्बन्ध क्या है ? यह बतलाना पुनः उसी प्रकार उसका दृष्टिकोण भी बन जाना और व्यवहार भी सर्वथा सम्भव है।

फिर इस बात को एक व्यक्ति अथवा जन-साधारण जितना कठिन एवं असम्भव समझता है, उतना नहीं है। हां, वैसे तो प्रत्येक कार्य में समय, शक्ति, अनुभव आदि की सर्वत्र आवश्यकता समझी जाती है। अर्थात् उपरोक्त सभी बातें योग्यता, पुरुषार्थ, शक्ति और अनुभव पर आधारित हैं अथवा तदनुसार सर्व यत्न प्रयत्न से सभी कार्य साध्य एवं सरल हो जाया करते हैं।

इसे इस प्रकार कहा जाय तो और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक कार्य, शक्ति, साहस, पुरुषार्थ एवं बुद्धि द्वारा असाध्य समझे जाने वाले कार्य भी सर्वथा साध्य होते देखे गये हैं। और फिर असम्भव तो कुछ भी नहीं। यही हमारी एक अटल धारणा है।

★

# क्या क्षात्र-बल निरर्थक है ?

प्रश्न — आप प्रत्येक बात में मानवता को आगे रखते हैं, और सर्वत्र उसीका महत्व दर्शाते हैं। ऐसा क्यों ? क्या क्षात्र-बल निरर्थक है ?

उत्तर — नहीं ! निरर्थक तो संसार में कुछ भी नहीं। परन्तु उस का समय और अवस्था विशेष पर बुद्धि द्वारा ही प्रयोग करना होता है। क्योंकि यह भी एक शक्ति है। जो शारीरिक बल और शस्त्र बल पर आश्रित है।

उसका प्रयोग भी किसी मनुष्य, समुदाय एवं राष्ट्र पर बल प्रदर्शित करने अथवा अत्याचार करने के लिए नहीं ! अपितु सब के प्रति प्रेम, सत्य एवं न्याय को सम्मुख रख, वैर भाव से रहित हो, अत्याचार को रोकने के लिए ही उसका प्रयोग होता है। जिससे स्वयं अत्यचार से बच, दूसरे को भी अत्याचार करने से रोक सके। इस शक्ति का नाम ही क्षात्र-शक्ति है। जिससे स्वयं जीवित रह सके। अन्यों को भी जीवित रहने देने की भावना काम करती हो।

यहां भी मानवता की उच्च भावना द्वारा ही कल्याण होगा ! न कि स्वयं नष्ट हो जाओ और दूसरे को भी नष्ट कर दो ! इसे क्षात्र-शक्ति व बल नहीं कहते। इसका नाम तो अत्याचार ही कहा जा सकता है। जिससे किसी एक का भी भला न हुआ। क्योंकि एक काम वह है - जिससे स्वयं ही जीवित रह सके। दूसरा मरे चाहे जीये ! यह कोई ऊंची बात नहीं ? दूसरा वह काम है, जिसके द्वारा स्वयं जीवित रहते हुए दूसरों को भी जीवित रखा जा सके ! इसी का नाम क्षात्र-शक्ति है, जिससे रक्षा

हो अपनी और दूसरों की भी। पुनरपि, यह सब शासक-शक्ति के कार्य हैं। जिसे मानवता का पूरा २ ज्ञान हो।

हमारे सम्मुख एक महान-मिशन है "मनुर्भव !" भगवान ने तुम्हें मनुष्य बनाया, और आदेश दिया, तुम स्वयं मनुष्य बनो! और ऐसा वातावरण उत्पन्न करो, जिससे सब मनुष्य बने, और बने रह सकें ! यहां आज्ञा है ! मानवता का पालन कर ! जो अपनी आत्मा के अनुकूल हो, सबके साथ वही व्यवहार कर ! यदि प्रत्येक व्यक्ति ऐसा करेगा, तो जहां वह स्वयं जीवित रह सकेगा, वह अन्यों को भी जीवित रख सकेगा। जीवो ! और जीने दो ! यही मानवता है, जिसका आचार-विचार और क्रियात्मक रूप व्यवहार से ही सब स्पष्ट हो सकेगा।

★

# मानव-सैनिक ही क्यों ?

१) जागृति।       २) निर्माण।       ३) कर्त्तव्य।

पूर्व सभी विषयों के स्पष्टी-करण के साथ मानव शब्द के सम्बन्ध में सब कुछ स्पष्ट हो चुका है। क्योंकि परिषद् के प्रत्येक सदस्य को मानव-सैनिक शब्द से सम्बोधित किया है। अतः 'सैनिक' शब्द के सम्बन्ध में स्पष्टतया स्पस्टीकरण निम्न प्रकार है। —

इस सैनिक शब्द में जो गुण, स्फूर्त्ति तथा आकर्षण है, वह संसार भर के किसी भी अन्य शब्द में नहीं पाया जाता। वास्तव में इस शब्द से हमें ऊंचे कार्यों के प्रति निरन्तर अग्रसर होने की भावना और प्रेरणा विशेष मिलती है।

यह संगठन जबकि कोई एक सेना नहीं, और न ही इसका सनिक शब्द से सम्बोधित किया जाने वाला सदस्य किसी सेना का सिपाही है। जैसे कि वर्त्तमान समय में सैनिक शब्द का व्यवहार होता है। परन्तु फिर भी हम सैनिक शब्द का 'मानव-कल्याण परिषद्' के प्रत्येक सदस्य के लिए सदैव प्रयोग करते आये हैं, और वर्त्तमान में भी करते हैं।

हमारे उद्देश्यानुसार इस शब्द में सभी गुण ठीक प्रकार जचते हैं। यथा —

१ — अपने जागृत-जीवन से जनता मानव-समाज में जागृति उत्पन्न करने वाला।

२ — अपने निर्मित जीवन द्वारा, मानव-समाज का निर्माणकर्त्ता।

३ — स्वयं कर्त्तव्य-निष्ठ हो, जनता में पारस्परिक-कर्त्तव्य-भावना की जागृति उत्पन्न करने वाला।

जो सैनिक शब्द की विशेष व्याख्या द्वारा सब स्पष्ट हो जाता है। सैनिक शब्द के स् + ऐ + नि + क, इस प्रकार चार भाग होते हैं।

स् से —

१) सत्य स्वरूप प्रभु का उपासक।

२) सत्य-निष्ठ, सत्यवादी, सत्याचारी तथा सद्व्यवहारी।

३) सदाचारी, शुद्धाचार-विचार से युक्त जीवन।

४) सब के प्रति समानता, समभाव एवं सम-दृष्टि रखने वाला।

५) सब की समानता से सम्मानपूर्वक सच्ची सेवा करने वाला।

६) स्वाध्याय शील, सत्संगी, सच्चे, अच्छे और ऊंचे व्यक्तियों से सदैव सम्पर्क एवं वातावरण में रहने वाला।

ऐ से —

जो विपरीत परिस्थिति तथा प्रगति में बाधक कारणों के उपस्थित होने पर भी मान-अपमान, हानि-लाभ से सदैव ऊपर उठ सुख दुःख की तनिक भी परवाह न कर सवथा एवं सदैव जागरुक अपने कर्त्तव्य-कर्म के प्रति प्रगतिशील रहता है।

नि से —

निषेधात्मक बातों से निरन्तर दूर रहने हुए तथा जिसका जीवन किसी प्रकार भी लोभ-प्रलोभन, आलस्य-प्रमाद का शिकार न हो कर सदा संयमी, निश्चल, अडिग जीवन, स्थिर-मति बुरे चित्र न देख, अश्लील पुस्तकें न पढ़, सर्वथा नियन्त्रण में रहे और परिषद् के कार्य में भी सर्वथा अनुशासन बद्ध नियन्त्रित रहते हुए, हर समय कर्त्तव्य के प्रति कटिबद्ध है।

क से —

जो अपने प्रति, अपने माता पिता के प्रति, तथा ईश्वर के प्रति, अपने राष्ट्र के प्रति, पुनः मानव-समाज के प्रति, कर्त्तव्य परायण, सम-दृष्टि तथा समभाव रखता हुआ एवं मानव-मात्र के प्रति सर्वत्र कर्त्तव्य पालक हो।

इस प्रकार इस शब्द से जहां हमें अपने कर्त्तव्य के प्रति सूझ प्रतिक्षण बनी रहती है, वहां निरन्तर अपने महान ध्येय के प्रति अग्रसर होने की प्रेरणा, जागृति, निर्माण एवं कर्त्तव्य चेतना भी मिलती है। यथा —

( स् ) से सदाचार व सत्य का पुजारी,
( ऐ ) से प्रगति तू करता चला जा।
( नि ) से है नियन्त्रण का संकेत भारी,
( क ) से कर्त्तव्य को निभाता चला जा ॥

इस प्रकार इन उपरोक्त गुणों से सम्पन्न-परिषद्-सदस्य को हम मानव-सैनिक शब्द से सम्बोधित करते हैं। जो कितना महत्व शाली एवं उच्च-शब्द है। जिसमें एक ऊंचे निर्मित-व्यक्ति के सद्गुणों का अर्थात् मानव में मानवता का समावेश पाते हैं।

अतः प्रत्येक सदस्य को इस गौरवान्वित शब्द को विशेष महत्व देकर प्रतिक्षण अपने आदर्श को सम्मुख रखना है।

सच्चा मानव-सैनिक बनना ही तो वास्तव में मानव-समाज की सर्वोच्च सेवा के योग्य सिद्ध होना है।

अतः जब इन उपरोक्त गुणों से युक्त निर्मित-व्यक्ति-समूह का निर्माण होगा, तभी तो मानव-समाज का निर्माण सम्भव हो सकेगा। इसी को हम क्रान्ति के नाम से पुकारते हैं। जो स्वयं

अपने से आरम्भ हो कर सारे संसार में उत्पन्न करनी है।

जिसके अनन्तर ही संसार में एक महान क्रान्ति सम्भव हो सकेगी ! जिसे हम एक नवयुग का निर्माण कह सकते हैं । पुनः जिसमें न अविद्या रहेगी, न अभाव और न ही वहां अन्याय होगा।

सभी समस्याओं का एकमात्र समाधान ही मानवता की भावनाओं से ओत प्रोत होना एवं मानव-सैनिक-गुणों से परिपूर्ण होना है। अतः —

हम सब मानव-सैनिक बन, मानवता का संचार करें ।
लक्ष्य हमारा एक यही है, दानवता का संहार करें ॥

★

# पार्टी और वर्त्तमान राजनीति में भाग क्यों नहीं?

पार्टीबाजी —

यह अनुभव से सर्वत्र देखा गया है कि पार्टियों में स्वतः ही एक अन्य पार्टी के प्रति घृणा और विद्वेष-भाव उत्पन्न होता है। इतना ही नहीं! अपितु उनमें पारस्परिक संघर्ष भी उत्पन्न होता ही रहता है। क्योंकि वह निरन्तर और हर अवस्था में सदैव अपना ही समर्थन करती और चाहती हैं। और दूसरों का विरोध और खण्डन। यथार्थरूप में इसका नाम पार्टी भी इसीलिए रखा गया है कि वह सर्वत्र सभी अवस्थाओं में भिन्नता, भेदभाव और सदा पार्ट ( टुकड़े ) ही बनाती है अर्थात् जन-संगठन को छिन्न-भिन्न कर देती है। एक दूसरे पर व्यर्थ का दोषारोपण द्वारा कीचड़ उछालती है, और हर उचितानुचित उपायों द्वारा सदैव सर्वत्र अहित करती और सोचती है।

कोई भी पार्टी किसी भी अन्य पार्टी से मिलकर नहीं चल सकती। क्योंकि वह सर्वत्र एकमात्र अपना ही प्रभुत्व बनाये रखना चाहती है।

यदि कभी मिलने मिलाने का किसी स्वार्थ वश प्रयत्न भी किया जाय तो, वह ऐसा प्रयत्न भी सर्वथा निष्फल ही होता देखा गया है। पार्टी सदा संकीर्ण-बुद्धि, संकीर्ण-विचार और संकीर्णता के भावों से इस प्रकार ओत प्रोत हो जाती हैं कि वह अपने संकीर्णता के दायरे के कारण स्वार्थ वश उनकी बुद्धि जनता के हानि लाभ तक को भी नहीं देखती। पुनः इससे उन पार्टियों का भी जो हानि-लाभ होता है वह तो होता ही है। ऐसी अवस्था में वह जन-साधारण को भी पथ-भ्रष्ट करने का श्रेय भी पार्टियां ही प्राप्त करती हैं।

पार्टियां अपनी पार्टी की उन्नति और आवश्यकता का ही नाना राग अलापतीं और विशेष ध्यान रखती हैं । अनेकों बार तो यह भूल ही जाती हैं कि उनका उद्देश्य क्या है ? और वह किधर जा रही हैं और क्या कर रही हैं । उनमें देश भक्ति के स्थान पार्टी भक्ति ही रहती है। इसलिए पार्टी भक्त कभी देश भक्त नहीं हो सकता ! और देशभक्त भी कभी पार्टी भक्त रह ही नहीं सकता ।

अतः वह एक राष्ट्र की जन-धन शक्ति का निरन्तर दुरुपयोग भी करती देखी गई हैं । किसी मनुष्य की केवलमात्र अपनी पार्टी के लिए ही उचितानुचित उपायों द्वारा उसको प्रयोग में लाना कितना पाप है ! इतना ही नहीं, वह इतनी अंधी हो जाती हैं कि वह अपनी पार्टी बाजी के रंग में वह जनता को पथभ्रष्ट करने में भी नहीं हिचकिचाती ( संकोच तक नहीं करती ) वह सोचती है कि जनता के चाहे हम स्वयं किसी काम न आय, अपितु अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए उसे खूब प्रयोग में लावें। चाहे जनता का कितना ही बुरे से बुरा भी क्यों न होता हो ।

पार्टी में यह ऐसी भावना काम करती है कि न स्वयं खायेंगे न खाने ही देंगे । उनमें इतनी संकीर्णता आ जाती है कि किसी अन्य व्यक्ति या शक्ति को वह जीवित ही रहते नहीं देख सकती । इतना ही नहीं ! यदि कोई चाहे कितना ही ऊंचा और आदर्श-पूर्ण कार्य भी क्यों न करता हो, वह उसे सहन नहीं कर सकती, उसके लिए भी नाना भान्ति की मन घड़न्त बातें घड़ती और उसके विपरीत ही प्रचार करती रहती हैं । उनका जनता में संगठन का नारा एक धोखा होता है । जैसे कोई नीचे आग जलावे और ऊपर से पानी छिड़कावे वाली बात होती है ।

ऐसे लोग जनता के भड़कने भड़काने में ही अपना स्वार्थ सीधा किया करते हैं। वास्तव में तो वह संगठन के घातक शत्रु ही होते हैं, जो जनता को कभी संगठित नहीं होने देते। वह संगठन का अर्थ केवल मात्र अपनी पार्टी को संगठित करने का लगाते हैं। जनता का संगठन नहीं।

यदि जनता स्वयं संगठित हो जाय तो उनका पार्टी संगठन जीवित कैसे रहे? और कहां रहे उनकी लीडरी व नेतागिरी? कुर्सी एवं निजी स्वार्थ?

जिस दाव पेच के आधार पर उनका पालन पोषण होता हो? या हो रहा हो? वहां जो भी काम किया जाता है, उसमें अपना प्रभुत्व एवं सर्व-स्वार्थ-सहित प्रभाव उत्पन्न करना और रखना ही एकमात्र अभिप्राय होता है, वही रह गया है।

वहां जनहित को प्रमुखता नहीं दी जाती। यह बात और है कि किसी काम के करने से जनता का भी कुछ भला स्वतः हो जाय।

यदि कोई व्यक्ति किसी ऊंचे आदर्श की ओर जनता को प्रेरणा देता है और कोई जन-सेवा का ऊंचा काम करता है, जिससे उनकी पार्टी को कुछ ठेस पहुंचती है। तो ऐसे व्यक्ति को वह अपना पक्का शत्रु समझ उसके प्रति नाना भान्ति के दोषा रोपण कर उसे बदनाम करते, जनता में उसका उपहास उड़ाते तथा अवसर मिलने पर उसके घात पात से भी नहीं चूकते! पार्टियों का तो ऐसा ही घृणित-रूप होता है। जो सर्व प्रकारेण सर्वथा ही त्याज्य है।

वर्त्तमान राजनीति —

आज की राजनीति तो स्वयं कुटिल अथवा चालों पर आश्रित होती है। जिसका अभिप्राय ही आज झूठ, फरेब धोखा,

छल-कपट, दुनिया-साजी और हेराफेरी करना ही नीति रह गई है ? जिससे सर्वथा आत्म-पतन और आत्म-वंचना के सिवाय और क्या है ? जहां सर्वत्र अहं और स्वार्थ ही प्रधान होता है ! राजनीतिज्ञों का मत है कि वहां सत्य-असत्य, पाप-पुण्य, धर्म अधर्म, उचित अनुचित यह सब राजनीतिज्ञों के लिए नहीं है।

राजनीति में भाग लेने वाली सामूहिक-शक्ति एवं संगठन वह स्वतः ही एक पार्टी का रूप बन जाती है। और फिर पार्टी जो राजनीति से पृथक नहीं हो सकती, न रह ही सकती है। अपितु दोनों का ही बहिन-भाई का सा दृढ़ सम्बन्ध काम करता है। इतना ही नहीं, जहां किसी अन्य पार्टी के साथ राजनीति का प्रयोग करती है तो वहां वह अपने पार्टियों के व्यक्तियों के साथ भी नीति ( वर्त्तमान चाल ) का प्रयोग किये बिना चूक ही नहीं सकती। पुनः ऐसी अवस्था में वहां मानवता जैसी उच्च एवं विशुद्ध भावना जीवित कैसे रह सके ? वहां सदैव अहं और स्वार्थ ही प्रधान होता है जिसके द्वारा उनकी लोकेषणा और वित्तेषणा की पूर्ति ही निरन्तर होती रहती है। यही उनका ध्येय होता है।

वर्त्तमान राजनीति और पार्टीबाजी इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध एवं जीवन एक दूसरे के सहारे ही रहता है।

पुनः मानवता का मिशन एवं उसका स्थान तो इन दोनों से कहीं बहुत ही ऊंचा है। एक मानव का मन और आत्मा जन-साधारण से कहीं ऊंचे रहता है तभी तो वह जनता का पथ प्रदर्शक होता है। और करता है। वहां उनके त्याग और तप के सम्मुख राजे महाराजे एवं उनकी गद्दियां भी तुच्छ सिद्ध होती हैं। क्योंकि श्रद्धामयी मानवता का मिशन एक बहुत ऊंचा मिशन है, जो अपना एक पृथक ऊंचा-स्थान रखता है।

वह इस प्रकार की पार्टीबाजी और वर्त्तमान राजनीति के तुच्छ चक्कर में भाग कैसे ले सकता है ? अतः वह अपनी अमूल्य

जीवन-शक्ति को कहीं अन्यत्र व्यर्थ न लगाकर जन-सेवा एवं कल्याण-कार्यों में लगाना और उसीमें बिताना एक ऊंचा कार्य समझता है। जो सीधा लोक परलोक में सच्ची शान्ति का मार्ग है उसकेलिए भी और समाज के लिए भी है। वास्तव में यही निष्काम सेवा है। और निवृत्ति का मार्ग है।

वह किसी प्रकार के संघर्ष से नहीं घबराता, न भय ही खाता है। न ही उसे किसी व्यर्थ के संघर्ष में पड़ने का चाव ही होता है।

वह समझता है कि इससे ऊपर रह कर शान्त और सही मस्तिष्क से वह जनता की निष्पक्ष रूप से अधिक और एक आदर्श सेवा कर सकता है।

अतः वह समझता है कि निष्पक्ष रूप से जन-सम्पर्क प्राप्त करके सच्ची और वास्तविक सेवा ही करनी है और सभी के सुख दुःख में काम आना है। यही उद्देश्य ही इस संसार में एक ऊंचा उद्देश्य है।

पार्टियों का उद्देश्य एकमात्र कुर्सी-पद-अधिकार प्राप्ति के अन्य है भी क्या ? जहां लोकेष्णा और वित्तेष्णा का ही प्रमुख स्थान है। जिससे वास्तविक जन-कल्याण एवं सब कर्त्तव्य-कर्म पीछे रह जाता है।

क्या ही अच्छा हो, यदि जनता का जीवन स्तर इतना ऊंचा हो कि जनता स्वयं इस प्रकार के अपने हितेषी व्यक्तियों को अपने वास्तविक उद्धार के लिए सर्व-सम्पत्ति से अपना हितैषी समझकर उसके इस प्रकार के उच्च-जीवन से लाभ उठाये, और वह भी निर्लेपभाव से जनता की सेवा के सत्र काय करे।

परन्तु अनुभव में केवल प्राचीन युगों की भान्ति कुछ विभूतियों के उदाहरणों के अतिरिक्त सब व्यक्ति ऐसे नहीं हुआ करते ? क्योंकि यहां त्याग, तप और सेवा ही प्रमुख होती है। जो निर्मित व्यक्तियों के द्वारा सम्भव है ।

अतः हमने एक ही मार्ग अपनाया है और वह है पार्टीबाजी और वर्त्तमान राजनीति से ऊंचा उठकर मानव-मात्र में एवं मानव-समाज में सर्वत्र समानता, एकता और मानवता का विशुद्ध वातावरण उत्पन्न कर एक आदर्श और महान कार्य करना । जिससे जन-साधारण की वास्तविक रूप में सच्ची और ऊंची सेवा हो सके। जो पार्टीबाजी और वर्त्तमान राजनीति से सर्वथा ऊपर उठकर जन-सेवा एवं उनका आत्म-कल्याण करना ही तो ऊंचा ध्येय है ।

जहां कोई भय नहीं, संघर्ष नहीं, और न कोई बाधा ! न किसी प्रकार की रुकावट ही उपस्थित होती हैं।

यह ठीक है कि जन-साधारण का इस जन-सेवा क्षेत्र में उतरना नितान्त असम्भव तो नहीं अपितु कठिन अवश्य है । विशेषकर लोकेष्णा और वित्तेष्णा के भूखे लोग तो प्रायः दूर ही रहेंगे ।जिनमें वास्तविक सेवा-भाव एव निष्काम-सेवा भाव होगा, वही इस मार्ग को अपना सकेंगे ।

यह ठीक है कि यह एक उच्च एवं महान कठिन-कार्य है । जबकि आज के युग में विशेषकर जहां का वातावरण ही अशुद्ध और स्वार्थ-परता से परिपूर्ण हो। वहां इस प्रकार के कार्य-क्षेत्र में निस्वार्थ-भाव से कूदने वाले, कितने ही ऊंगलियों पर गिने जाने वालों का कार्य होगा। ऐसे व्यक्तियों के निर्माण में भी कितनी ही कठिनाइयां होंगी ? जिनके पैतृक-संस्कार भी काफी

बलवान होंगे ! पुनः उनके स्वभावों को भी बदलना होगा, जिन्हें वर्षों में जाकर पलटा और बदला जा सकेगा । उनमें भी कुछ विशेष तैयार हुए व्यक्ति ही क्षेत्र में उतरने योग्य सिद्ध हो सकेंगे। ऐसे व्यक्तियों की जब एक असाधारण-जन-शक्ति क्षेत्र में कूद पड़ेगी, जिन्हें सांसारिक लोभ-प्रलोभन डांवाडोल न कर सकेगा। ऐसे ही सिद्ध-व्यक्ति इस महान उद्देश्य की पूर्ति कर सकेंगे ।

इस प्रकार हम सब सम्प्रदायों, पार्टी वालों, तथा राजनीतिज्ञों को भी बदल सकेंगे। तभी संसार में मानवता का विशुद्ध-वातावरण उत्पन्न हो सकेगा।

कई व्यक्ति ऐसा प्रश्न करगे ! कि यह तो कठिन है, और नितान्त असम्भव भी ? क्योंकि जो भी कुछ समूह ऊंचा आदर्श लेकर चला है, वह शक्ति-सम्पन्न होते ही पैंतरा बदल लेता है।

परन्तु यहाँ हम इस बात को पूर्णतया जान और समझकर, कि अन्य कार्य-क्षेत्र में उतरने वाले समुदाय एक ऊंचा और स्वच्छ सार्वजनिक कार्य करने के लिए क्षेत्र में आये, और शक्ति-सम्पन्न होते ही झट राजनैतिक अखाड़े के पहलवान देखे गये ।

इस का विशेष कारण या तो वह स्वयं अनिर्मित-व्यक्ति होते हैं, अथवा उनके सञ्चालकों ने शायद ऊपरी ढंग कुछ और भीतरी रूप कुछ अन्य ही अपनाया होता है। तब ऐसा होता है । या जिनके सामने लक्ष्य को इस प्रकार तोड़ मरोड़ कर रखा गया होता है, कि जो चाहे मतलब निकाल लिया और जनता को भी धकेल दिया जिधर चाहा ! अथवा वर्त्तमान की कोई राजनैतिक चाल ही होती है। तभी ऐसा होता है। पुनः जिनके अन्तः करण में मानवता की भावना का सर्वथा अभाव होता है, और ऐसे व्यक्ति मन, वचन और कर्म में सर्वथा भिन्नता रखते हैं, ऐसे

आदर्श व लक्ष्यहीन लोगों को अवसरवादी कहा जाता है । जो निरन्तर अपने निजी स्वार्थपरता के कारण ही समय २ पर विभिन्न रूप बदलते रहते हैं । ऐसा उनका यह एक व्यवसाय ही होता है । पुनः ऐसा कुछ विचार-धारा पर भी निर्भर होता है विशेषकर उन व्यक्तियों पर भी जो क्षेत्र में कार्यार्थ निकलते हैं ।

सो इन सभी बातों को पूर्णतया ध्यान में रखकर ही हम क्षेत्र में कूदने का पूरे नियन्त्रण के साथ केवल मात्र ऐसे ही निर्मित व्यक्तियों को अधिकार देंगे, जिन व्यक्तियों के हाथों में इस मिशन काय का सञ्चालन भार होगा । वह स्वयं इस प्रकार की पार्टीबाजी और वत्तमान राजनैतिक दल-दल से सर्वथा अछूते रह सकेंगे जिनका वास्तव में निष्काम भाव से जन-सेवा में ही जीवन-यापन करना ध्येय होगा, कुर्सी व अधिकार नहीं ।

यहां पार्टीबाजी और वर्त्तमान राजनीति के सम्बन्ध में जो इतना सब स्पष्टी करण किया गया है, वह किसी प्रकार की तनिक भी ईर्ष्या द्वेष भावना से नहीं । अपितु एकमात्र निष्पक्ष रूप से यथार्थ रूप में अनुभव के आधार पर केवल मात्र वह भी सब इसीलिए, कि हम पार्टीबाजी और वर्त्तमान राजनीति में भाग क्यों नहीं लेते ? यहां इस प्रश्न का उत्तर ही एकमात्र लक्ष्य है !

अतः इस संगठन के प्रत्येक सदस्य के लिए गत-अनुभवों को दृष्टि-गत रखते हुए यह अनिवार्य होगा । और वह प्रतिज्ञा-बद्ध भी रहेंगे कि वह अपने राष्ट्र की किसी प्रकार की पार्टीबाजी तथा वर्त्तमान राजनैतिक आन्दोलनों से सर्वथा पृथक रह कर अपनी अमूल्य जीवन-शक्ति को केवल मात्र परिषद् के सर्वथा नियन्त्रण में रह निष्पक्ष रूप से मानव मात्र की समानता, एकता एवं मानवता के उच्च मिशन के कार्यार्थ लगा सकेंगे ।

और निर्वाचनादि के समय में वह किसी भी पार्टी विशेष को नहीं, अपितु ऐसे व्यक्ति विशेष को ही महत्व देंगे, जो पार्टी-बाजी से सर्वथा अछूता रह कर वास्तविक-रूप में जनता का सच्चा सेवक सिद्ध होगा। वह अपने लक्ष्य से किसी भी पार्टी विशेष के दबाव व प्रेरणा का शिकार न हो सकेगा। जिससे निष्पक्ष रूप से जन-साधारण की सच्ची सेवा हो सकेगी। क्योंकि सेवा ही इस जगती में सर्वोच्च स्थान रखती है ।

इसलिए — आओ ज़गवालो ! जरा सेवा में खोके तो देखो ।

सेवा शैतान को इन्सान बना देती है ।

सेवा इन्सान को महान बना देती है ।

सेवा इन्सान को भगवान बना देती है ।

★

# क्या यह संगठन भी कोई एक पार्टी है?

सर्व प्रथम यह जानना आवश्यक है कि पार्टी क्या होती है? इसका उत्तर — इससे पूर्व ही पार्टी आदि के विषय में प्रायः सभी स्पष्ट किया जा चुका है। पुनरपि यहां इस सम्बन्ध में और भी स्पष्ट किया जाता है। पार्टियों के दृष्टि कोण में विभाजन होता है। पार्टी पार्ट बनाती है। पार्टियों का सबके साथ समान दृष्टि कोण नहीं होता, न हो ही सकता है। भिन्नता तो निश्चित है ही। जब कोई पार्टी अपने काय में सफल नहीं होती, तब जहां वह जनता के सेवा कार्य के लिए क्षेत्र में कूदी थी, अब वह जनता को अपने साथ जोड़े रखने की चिन्ता में पड़, अपनी शक्ति बनाये रखने के लिए नित्य नये २ उचित अनुचित प्रपञ्च रच, जनता को धोखा देने में भी नहीं संकुचाती। अपितु अवसर देख, जनता को आवेश में ला, उसका दुरुपयोग कर अपनी सत्ता स्थापित करने एवं रखने का प्रयत्न करती है।

ऐसी अवस्था में उन्हें जनता के कार्य सेवा आदि सब भूल एकमात्र उसे अपनी पड़ जाती है। और वह भी सर्वथा स्वार्थान्ध होकर भले बुरे की विचार-बुद्धि भी नष्ट कर सुधारक के स्थान पर घातक ही सिद्ध होती है।

जिसका मुख्य कारण यह है कि वह स्वयं निर्मित-शक्ति नहीं होती। उनका ध्येय तथा नियमादि सब परिस्थिति के साथ बदलते रहते हैं।

"मानव-कल्याण परिषद्" जिसका ध्येय तथा मौलिक नियम ईश्वरीय कार्य होने से सर्वथा अटल हैं। उनमें किसी प्रकार का तनिक भी परिवर्त्तन करने कराने की सम्भावना ही उत्पन्न नहीं

हो सकती । हां, परिवर्त्तित-स्थिति के कारण देश-काल व अवस्थानुसार कार्य-क्रम में अवश्य ही परिवर्त्तन करना या लाना जो सर्वथा उचित है, और अवश्यम्भावी है। कार्य-क्रम के बदलने से ध्येय और मौलिक नियम नहीं बदला करते।

अतः यह भलीभान्ति समझ लेना आवश्यक है कि यह संगठन न तो स्वयं कोई पार्टी है। और न ही किसी पार्टी का अनुयायी संगठन ! अपितु सर्वथा निष्पक्ष,स्वतन्त्र मानवता का विशुद्ध-वातावरण तथा सार्वजनिक जन-कल्याणकारी सार्वभौम आन्दोलन अवश्य कहा जा सकता है।

जिसके नाम और विचारधारा तथा कार्य-क्रम द्वारा भली-भान्ति स्पष्ट हो जाता है।

पुनः पार्टियों में तो परस्पर जहां एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या द्वेष घृणा आदि दोष उत्पन्न होते हैं । वहां मनुष्य मात्र के हित की भावना ही कुचली जाती है । और पार्टियों वाले व्यक्तियों का निजी जीवन विकास भी उनकी संकीर्ण भावना द्वारा स्वतः रुक जाता है । पुनः उदारता आदि सद्गुणों के अभाव द्वारा आत्मोन्नति तो एक मात्र स्वप्न ही बन जाती है। इस प्रकार उनके संकीर्ण विचार भाव और बुद्धि द्वारा केवल कूप मण्डूक ही बनना पड़ता है।

परन्तु यह संगठन किसी प्रकार की पार्टी बाजी के झगड़े में न पड़ता हुआ सब पार्टियों साम्प्रदायिक भावनाओं से पृथक रहते हुए सभी सम्प्रदायों, किसी भी संस्था विशेष के अनुयायी न होते हुए सभी संस्था अथवा संगठनों, जन्म जात पात के भेद न मानते हुए सभी जातियों के मनुष्यों के प्रति सदैव समदृष्टि रखता है। अर्थात मानवता के नाते निष्पक्ष रुप से सभी को समान दृष्टि से

देखते हुए सबका हित चिन्तन और यथेष्ट रूप से उन सबका हित कार्य करने में अपना सौभाग्य समझता है । क्योंकि परिषद् का ध्येय व्यक्ति गत जीवन-निर्माण करते हुए मानव-समाज का निर्माण करना तथा उसकी वास्तविक निष्पक्ष रूप से सेवा करना है । और जीवन-कल्याण के लिए मार्ग का दिग्दर्शन करना आदि ।

ऐसे शुद्धाचार विचार से युक्त मानव मात्र के सेवक व्यक्तियों के वातावरण द्वारा एक सुदृढ़ संगठन बनाना है, जिसके द्वारा मनुष्य मात्र को वर्तमान में नानाविध पतन से बचाकर परस्पर विशुद्ध मानवता एवं परस्पर प्रेम भावना, समानता, एकता के द्वारा सबको ऊंचे जीवनस्तर तक पहुंचाना है ।

हमने यह समझ लिया है कि जहां प्रेम सत्य और न्याय तथा निष्काम सेवा द्वारा स्वयं प्रभु के समीप पहुंचना है, वहां इन्हीं विशुद्ध साधनों द्वारा ही प्रभु की सृष्टि के मानव-मात्र में समीपता पाना और समानता लानीहै ।

इतना ऊंचा विशुद्ध ध्येय बिशुद्ध साधनों द्वारा ही सम्भव है । इससे ध्येय कभी भी अपवित्र एवं घृणित नहीं हो सकता । क्योंकि विशुद्ध ध्येय की पूर्त्ति कभी अशुद्ध साधनों द्वारा सम्भव ही नहीं हो सकती ।

जबकि इस संगठन का ध्येय प्रभु की असंख्य और अनन्त सृष्टि में मानव-मात्र के लिए ही नहीं, अपितु प्राणी-मात्र के लिए हैं । जिसे हम ईश्वरीय कार्य, पुण्य कार्य, और महान कार्य जानते और मानते हैं । जिसके लिए कभी, किसी भी प्रकार असत्य छल अथवा अन्यान्य पार्टियों की भान्ति कोई गुप्त षड्यन्त्र आदि रचने व करने की आवश्यकता ही नहीं ।

जब ध्येय स्पष्ट और पूर्ण है । और सर्वथा शुद्ध भी, है तो इसके लिए सब साधन भी स्पष्ट और पूर्ण तथा पवित्र होंगे, तभी यह संगठन भी स्वच्छता एवं स्पष्टता से प्रगति की ओर स्वतः अग्रसर हो सकेगा ।

अतः इस प्रकार के महान और महत्व शाली कार्य एकमात्र महान आत्माओं द्वारा ही सर्वथा सम्भव है।

जिसके लिए हमें निरन्तर महान आत्माओं के गुणों से विभूषित एवं सर्वथा ओत प्रोत होना है । अतः यह संगठन कोई पार्टी नहीं है। अपितु सर्व जन-कल्याण कारी एवं संसार के मानव मात्र तथा प्राणी मात्र के लिए सर्व-व्यापी आचार-प्रधान आन्दोलन अवश्य है। अर्थात् जिसका कार्य क्षेत्र सर्व सीमित सीमाओं से रहित सार्वभौम रूप है । जिससे पार्टी होने का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। यह यथार्थ है।

# यह महान-कार्य कैसे हो सकेगा ?

यह इतना ऊंचा और महान कार्य है । जो त्याग एवं तप से तपे श्रद्धामयी-मानवता की विशुद्ध विचार धारा से ओत प्रोत, आत्म विश्वास और प्रभु विश्वास से परिपूर्ण, कर्मठ जन-मानस की निष्पक्ष एवं निष्काम भाव से सेवा में श्रद्धा पूर्वक निरन्तर रत रहने वाले, ऊंचे और महान व्यक्तियों द्वारा ही सम्भव है ।

तन पवित्र सेवा किये - धन पवित्र कर दान।
मन पवित्र सुमरण किये - तीनों विध कल्याण ।।

जिससे मानवता का एक आदर्श वातावरण बन सकेगा, तभी कल्याण होगा ।

जिसके लिए जहां स्वयं हमें व्यक्ति गत जीवन में त्याग तप और बलिदान की भावनाओं को निरन्तर जागृत करते हुए उस सर्वोच्च-जन-सेवा के लिए सर्वथा योग्य सिद्ध होना है। वहां हमें जन-साधारण के निर्माण एवं सर्व सेवा कार्यों के प्रशिक्षण के लिए भी शीघ्र ही एक प्रमुख केन्द्र की स्थापना करनी है । जहां से उच्च कोटि के निर्मित व्यक्ति मिशनरी सर्वत्र सर्व-सेवार्थ भेजे जा सकेंगे क्योंकि :—

जिस वातावरण के अभाव में आज समूचा समाज ही पथ भ्रष्ट होकर अनाचार दुराचार पापाचार और व्यभिचार की धधकती अग्नि की भट्ठी में दग्ध हो रहा है। पुनः जहां स्वार्थ-परता की आन्धी ने प्रायः सभी को अन्धा बना दिया है। किसी के दुःख दर्द की वहां क्या पूछ ?

शुद्धाचार विचार जहां स्वप्न बन गया हो ? धर्म (कर्त्तव्य-कर्म) को जहां धत्ता समझ जिसका सर्वत्र उपहास और अट्टाहास ही होता हो ? अहं और स्वार्थ तथा भोगवाद को एकमात्र आगे रख आमोद प्रमोद ही जीवन का जहां लक्ष्य बन गया हो? वहां प्रेम, सत्य, न्याय और मानवता को कौन पूछेगा ? ऐसा प्रश्न उपस्थित होने पर भी हमने अपने अन्तःकरण के दृढ संकल्प एवं आत्म-विश्वास के साथ एक व्रत धारण कर लिया है कि "देहंवा पातयेयम् कार्यं वा साधयेयम्" अर्थात् या तो कार्य सिद्धि होगी, या बलिदान देना होगा ?

क्योंकि निष्काम-सेवा भावना एवं उदारता तथा उन्नत और दृढ-संकल्पी आत्माओं द्वारा सभी कठिन से कठिन कार्य भी सुगम और सरल हो जाया करते हैं। फिर —

मैं आशा-वादी-मानव हूं, बाधा आती है तो आने दो ।
बाधाओं को भी हंसने दो, मुझ पर प्राबल्य दिखलाने दो ॥
मैं बाधाओं से जूझ, अधिक नूतन-गति पाया करता हूं ।
मैं बाधाओं का स्वागत कर, निज-बल दिखलाया करता हूं ॥

पुनः ऐसी दृढ धारणाओं के सम्मुख कुछ भी असाध्य और कठिन नहीं है । जो मानव सैनिक और उसकी निर्मित शक्ति से न हो सकेगा ।

समय २ पर जब भी धर्म (कर्त्तव्य कर्म) का ह्रास हुआ। ऐसे समय में जन-मानस के उद्धार एवं उत्थान के लिए महान आत्माओं का क्षेत्र में अवतरण (आगमन) हुआ। जिन्होंने संसार के पथ-भ्रष्ट मानव-समाज का पथ प्रदर्शन किया, और जनता को कर्त्तव्य-कर्म का ज्ञान करा कर सत्पथ की ओर मोड़ लाए । उन्होंने नाना भान्ति के कष्ट उठाए, और उनके कार्य में अनेकों

बाधाएँ आई। क्या वह पीछे हटे ? कदापि नहीं। क्योंकि :—

शूर सुधीर मनुष्य को रोक २ कर राह।
लेती हैं कठिनाइयां उनके उर की थाह ॥

फिर — मर्द जो होते हैं, जमाने को बदल देते हैं!

इतना ही नहीं — साहसी, दृढ-संकल्पी, प्रतिज्ञा-बद्ध एवं व्रती यह चारों सभी अपनी साधना तथा सभी कामों में सर्वत्र सदैव सफल होते, और विजयी होते हैं।

ऐसी दृढ संकल्पी आत्माओं के सम्मुख बड़ी से बड़ी समस्याएँ स्वतः के बल पर सिद्ध होती देखी गई हैं। और सभी परिस्थितियां स्वयं उनका चरण चुम्बन करती हैं। ऐसे व्यक्ति परिस्थितियों के चक्कर को आत्म दृढ संकल्प शक्ति के द्वारा अपने अनुकूल कर लेते हैं। जन धन सब शक्ति स्वयं उनकी अनुयायी बन पीछे चल पड़ती है।

प्रभु की सभी दैवी शक्तियां ऐसे व्यक्तियों के कार्यों में अपना पूर्ण योग देती हैं। क्योंकि आत्म विश्वास एवं दृढ संकल्प शक्ति जो स्वयं एक महान बल है। क्या! जो सुदृढ सदव्रती नियन्त्रित, सुगठित, सुदृढ-निश्चयी, निर्मित, आत्मशक्ति के सामने कुछ असम्भव होगा? "अयं मे हस्तो भगवान" ! मैं जो चाहूं सिद्ध कर सकता हूं। ऐसा आत्म विश्वास होना चाहिये।

पुनः आत्म विश्वास वह दैवी शक्ति है जिसके बिना संसार में कोई भी सफलता उपलब्ध हो ही नहीं सकती। वास्तव में आत्म विश्वास और दृढ संकल्प शक्ति ही जगत के सभी कार्यों में विजय की एक अनोखी कुंजी है।

आप स्वयं किसी भी क्षेत्र के विजेता को देखिये! उसकी विजय का एक मात्र रहस्य उसके अटूट आत्म विश्वास और दृढ संकल्प में ही निहित है।

संसार के इतिहास के देखने से पता चलेगा ! आत्म-विश्वास विश्व का एक अद्भुत चमत्कार रहा है । हमारी असफलता और निराशा का एकमात्र कारण सदैव हमारी मानसिक दुर्बलता और आत्म विश्वास की कमी ही रही है। पुनः अपने ऊपर विश्वास न होना आत्म दुर्बलता की सूचक है। ऐसे लोगों द्वारा कोई भी कार्य सफल एवं पूर्ण नहीं हो सकता। वह जीवित भी मुर्दा हैं।

क्या हम यह नहीं जानते कि अपने पर विश्वास रखकर हम एक अजेय शक्ति प्राप्त कर लेते है। जिसकी हम कभी कल्पना भी नहीं कर सकते।

आत्म-विश्वास को जगाकर हम अपनी शक्ति को चौगुनी कर लेते हैं। आत्म-विश्वास के साथ कहे गये शब्दों का एक चमत्कारिक प्रभाव होता देखा गया है । जो हजारों नहीं लाखों व्यक्तियों में भी एक नई स्फूर्ति और प्रेरणा की अग्नि फूकं देता है। आत्म विश्वास के बिना तो ईश्वर भी सहायक नहीं होता।

आत्म-विश्वासी के सम्मुख सभी दैवी शक्तियां झुक जाती हैं जो मुर्दों में भी नव जीवन फूकं देती हैं। किसी ने सच कहा है— "संसार उनके लिए रास्ता छोड़ देता है, जो यह समझते और जानते हैं कि उन्हें कहां जाना है" अपितु आत्म विश्वासी व्यक्ति संसार में जो चाहे कर सकता है। इसलिए अपने जीवन में आत्म विश्वास और दृढ-सकल्प शक्ति को जगाओ! और फिर विजय हमारी है।

यह स्मरण रहे कि त्याग, तप, एंव बलिदान तथा की गई निष्काम सेवा कभी व्यर्थ नहीं जाती ! अपितु समय पाकर उनका महान परिणाम रूप फल सब के सम्मुख आता है। एसी विभूतियां मरना भी जानती हैं और जीना भी ?

कर्त्तव्य कर्म की प्रेरक ऐसी ही अद्भुत-शक्ति क्या कुछ नहीं कर सकती ? मैंने स्वयं अपने जीवन में जो सब प्रत्यक्ष देखा है। और अनुभव भी किया है। जब कि अपने कर्त्तव्य कर्म के लिए समय पड़ने पर अपने घर और जीवन तक की सब मोह माया त्याग कर, कितने अतुल-उत्साह, वीरता और साहस पूर्वक सहर्ष जिन्होंने अपनी जीवन आहुतियां दीं। हम सब नत-मस्तक हो, उन्हें आज शत-शत प्रणाम करते हैं। उन ऐसी अमर बलिदानी महान विभूतियों की अमर गाथाएँ सदैव अविस्मरणीय रहेंगी। और मानव-समाज के लिए सदैव प्रेरणा स्रोत बनी रहेंगी।

उन्हीं बलिदानियों द्वारा कर्त्तव्य के लिए बलिदान देने वाले जीवन-दृश्य यदा कदा मेरी आंखों के सामने अब भी आते रहते हैं। जिनसे मुझे अपने जीवन में विशेष प्रेरणा एवं अपूर्व साहस कुछ कर मरने के लिए स्फूर्ति एवं जोश की प्रचण्ड अग्नि आज भी धधक उठती है।

ऐसी एक नहीं, अनेकों, एक आदर्श मानव-सैनिक के रूप में आज भी जीवित जागृत शक्ति के रूप में विद्यमान हैं। जिनके त्याग तप के जीवन से मुझे विशेष जीवन-प्रेरणा तथा उत्साह सदैव मिलता रहता है। ऐसी महान विभूतियां धन्य हैं ! मान्य हैं !! पूज्य हैं !!! जो अपने जीवन में एक नहीं अनेकों के लिए विशेष प्रेरणा स्रोत बनीं हैं

अवसर आने पर उन्हें पुनः क्षेत्र में कूदना होगा ! क्योंकि वह कर्त्तव्य के प्रति सदैव जागृत हैं। ऐसी जीवित-जागृत मानव-शक्ति के लिए यह ठीक ही कहा है:—

राख ठण्डी नहीं, अंगार छिपे बैठे हैं।
समुद्र शान्त सही, ज्वार छिपे बैठे हैं॥
मौन को व्यर्थ अर्थ देना, अभी ठीक नहीं।
कौन जाने किसमें. क्या अरमान छिपे बैठे हैं॥

वर्त्तमान समय की दिन रात बदलती परिस्थितियां एवं नित्य नई २ घटित घटनाएँ तथा अमानवता का भयंकर रूप उन्हें स्वयं पकड़कर बाहर मैंदान में धकेल देगा। ऐसे समय में वह चुप और शान्त नहीं रह सकेंगे ? न बाल-बच्चों एवं गृहस्थ की मोहमाया की बेड़ियां उन्हें बान्ध ही सकेंगी ? वह कर्त्तव्य-हीन बन कर घर में छुपे ही न रह सकेंगे ? वह आलस्य एवं प्रमाद के वश हो, बैठे भी नहीं रह सकेंगे ? न वह नित्य नई २ नाना प्रकार की दिल दहलाने वाली अमानवीय घटनाओं को देख तमाशबीन ही बने रह सकेंगे ? अपितु वह समय पड़े पर अपने कर्त्तव्य के प्रति एकमात्र मानवता की रक्षा एवं सर्व-सेवा के लिए स्वयं क्षेत्र में कूद पड़ेंगे।

भावों की भीषण ज्वाला को, सीने में कौन दबा सकता है ?
अलबेले दृढ-संकल्पी को, रस्ते से कौन हटा सकता है ?

पुनः वह समय का स्वयं नेतृत्व करेंगे ! जनता उनका स्वयं अनुसरण करेगी। यह मेरा आत्म-विश्वास है।

यह कार्य जितना महान है, इस के लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी और बलिदानों की आवश्यकता पड़ेगी। पुनः इस महान मिशन के लिए असंख्यात्, असंख्य आहुतियां देनी होंगी ? तभी जाकर मानव-समाज का वर्त्तमान दुःख, अशान्ति और आत्मिक-कष्ट सदा के लिए दूर हो सकेगा !

इसीलिए हम जीवन से कर्त्तव्य-कर्म को विशेष महत्व देते हैं। क्योंकि यह सब उसी का दिया है ! और उसी के आदेश के लिए ही है।

# विश्व के महापुरुष और उनका मान।

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्" अर्थात् मानवता की सर्व प्रकारेण-रक्षा और अमानवता को भूतल से मिटाने के लिए समय २ पर ऐसे महापुरुष जन-मानस के कल्याणार्थ अपनी योग्यता, प्रतिभा तथा महान गुणों से आभूषित हो श्रद्धामयी-मानवता के सर्वोच्च गुणों से ओत-प्रोत होकर सर्वत्र सभी देश देशान्तरों में उत्पन्न हुए और तद् स्थानीय जनता ( मानव-समाज ) को मानवता का सन्देश देते रहे। ऐसे महापुरुष आधुनिक समय में भी उत्पन्न हुए और सदा समय २ पर होते ही रहेंगे।

जो यथार्थ में जनता ( मानव-समाज ) के पथ-प्रदर्शक होते हैं, और वहां की जनता को सर्व-प्रकारेण उनकी स्थानीय स्थिति अनुसार जन-जागृति एवं जीवन प्रेरणा सन्देश देते हैं।

उन महापुरुषों को जनता उनके अनुयायी बन, अनेक रूपों में अपने २ दृष्टि-कोण के अनुसार देखती आई है। और उनके प्रति उसी प्रकार आदर तथा श्रद्धावाचक-शब्दों का प्रयोग भी करती है। किसी ने उन्हें महात्मा कहा ! किसी ने नेता ! किसी ने अवतार ! किसी ने पैगम्बर ! तो किसी ने उन्हें ईश्वरीय-दूत कहा ! क्योंकि उन महापुरुषों ने —

मनसा, वाचा, कर्मणा, होकर सत्याधार।
सभी महापुरुषों ने विश्व का, किया अमित उपकार॥

परन्तु खेद है कि — उन्हें यथार्थ-रूप में न पहचान कर उनके

अनुयायियों ने उनके नाम पर, नाना भान्ति के मत-मतान्तर बना डाले। और इस प्रकार उन्हें भी अपने स्तर के अनुसार उसी संकीर्णता के गढ़े में धकेल डाला ! जो लाभ उनके जीवन तथा उपदेशों से ग्रहण करना था ! यथार्थ-रूप में उसे ग्रहण ही न कर पाये ! अपितु अनुयायियों के समूह में जो सम्मिलित हो गए वह तो अपने ! और उनसे भिन्न सब पराये समझे जाने लगे।

वास्तव में उन महापुरुषों के अनुसार उनके अनुयायी व्यक्तियों को विशुद्ध-मानवता की विचार-धारा न मिलने के कारण शनैः २ वह एक दूसरे से दूर ही दूर होते चले गये ! समय के बीतने पर उनके परस्पर अन्तर-भेद इतने बढ़ गए ! कि उनके दृष्टि-कोण, विचार, हृदय और लक्ष्य में भी भिन्नता बनती चली गई। और अब उन सब के पारस्परिक-व्यवहार, रीति-रिवाज एवं रोटी-बेटी के सम्बन्ध भी सब टूट गए !

कुछ और अधिक समय बीतने पर पुनः वह जाति-उपजातियों के रूप में बदल गये। ऐसी अवस्था में अब तो उनकी संकीर्णता की सीमाएँ और भी अधिक दृढ़ हो गई। पुनः एक दूसरे के प्रति घृणा तथा निन्दास्पद-वाक्यों का प्रयोग होने लगा। और पारस्परिक-युद्ध तक नौबत आ गई ?

इस प्रकार हम सब पतन की ओर अग्रसर होते चले गए ! और गिरते २ आज उस खाई में आ गिरे ! जहां एक दूसरे को समझ न सका ! मिल न सका ! देख न सका ! भा न सका ! भ्रातृ-भाव ही सर्वथा समाप्त हो गया ! अब हो गए एक दूसरे के पक्के शत्रु ! चोरा-चोरी, जोरा-जोरी होने लगी ! और हमारे सब धर्म, कर्म, शर्म सभी प्रायः समाप्त हो गए ! और इस प्रकार बे रोक-टोक स्पष्ट रूप में पापाचार का नग्न नृत्य कर डाला।

वास्तव में आज निष्पक्ष एवं निःस्वार्थ भाव से सच्चे, ऊंचे और आदर्श-पथ-पदर्शन करने वालों के अभाव के कारण ही, आस्तिक-भावना प्रायः समाप्त हो गई ? मानवता की पवित्र विचार-धारा का स्रोत भी प्रायः बन्द होता चला गया ! ऐसी अवस्था में आज हम अपने जीवनोद्देश्य तथा वास्तविक-स्वरूप को भी नितान्त भूल से गये !

अब रह गई हमारे सम्मुख केवल मात्र उन महापुरुषों की गाथा, जो हमारे, पथ-प्रदर्शक थे ! और महात्मा थे ! जिन्होंने हमें कर्त्तव्य के प्रति जागरुक होने के लिए भरसक प्रयत्न किया। हमें विशुद्ध मानवता का मार्ग दर्शाया । और हमें प्रभु का सन्देश सुनाया । जो जनता के हित के लिए उत्पन्न हुए और आजीवन जन कल्याण कार्य करते रहे । और अन्त में जिन्होंने जनता के लिए अपना अमूल्य जीवन तक बलिदानकिया। क्या उन महा-पुरुषों की केवल मात्र जीवन गाथओं से हमारा कल्याण होगा ? नहीं ! कदापि नहीं !!

अपितु आज हमें उन महापुरुषों का वास्तविक रुप में स्वयं अनुसरण एवं अनुकरण करना होगा। उन महापुरुषों में आस्तिकता थी, उनमें मानवता थी।

अतः हमें आज आस्तिकत्व की भावना जागृत कर और मानवता की विशुद्ध विचारधारा का अमृत पान करके आस्तिकता से युक्त मानवता का विशुद्ध वातावरण सर्वत्र उत्पन्न करना होगा।

हमारे लिए संसार के महापुरुष जिन्होंने समयानुसार जनता (मानव-समाज) का पथ प्रदर्शन कर मानव मात्र का कल्याण किया। वह सभी मान्य है !

परतु हम किसी व्यक्ति वाद के चक्कर में न पड़कर वास्तविक रुप में उनके बतलाये विशुद्ध मानवता के जन-कल्याण कारी पथ के अनुगामी हैं। जिस पथ का वास्तविक स्रोत एक मात्र सत्य का ज्ञान है। संसार में जो भी मानव मात्र के कल्याण की बात और सत्यपूर्ण ज्ञान की बात है जिसके द्वारा लौकिक और पारलौकिक उन्नति सम्भव है। वह सभी सत्य और ज्ञान है।

वास्तव में आज संसार को एकमात्र आवश्यकता है ऐसी पथ प्रदर्शन करने वाली एक निर्मित जन शक्ति की। जो अपने आचार, विचार और व्यवहार से क्रियात्मक रूप में प्रत्येक मनुष्य मात्र का निर्माण कर समस्त मानव समाज का निर्माण कर दे।

इसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए 'मानव कल्याण परिषद्' की स्थापना की गई है। पुनः उसी उद्देश्य की पूर्त्ति स्वयं सारा मानव समाज ही करने लगे।

ऐसे वातावरण की उत्पत्ति करना ही एक सर्वोच्च महान कार्य है। जो इस संगठन ने करना है।

अतः यह संगठन प्रत्येक मनुष्य मात्र को जहां समानता का स्थान देता है। वहां परस्पर प्रत्येक मनुष्य मात्र में वास्तविक भ्रातृत्व की भावना जगाकर उन सब में पारस्परिक एकता एवं प्रेम सम्बन्ध को भी दृढ़ करता है।

मानवता का यह वातावरण कभी किसी समय भी अपनी सर्वोच्च आदर्श-मानव-मात्र के लिए कल्याण-कारिणी विचार धारा का सर्वत्र स्वयं अनुपान करता कराता हुआ किसी सम्प्रदाय और पार्टी का रूप नहीं बन सकेगा। और न ही किसी व्यक्ति या

समूह को यह अधिकार ही होगा कि, वह इस मानवता के वातावरण को संकीर्णता का रूप दे सके। ताकि यह पवित्र स्रोत सदैव निर्बाधित रूप से प्रवाहित होता रहे और जिससे यह वातावरण भी दिन दूनी रात चौगनी सर्वोन्नति करता कराता रहे। इस प्रकार संसार से अशान्ति, दुःख, विषमता तथा असमानता सदैव के लिए समाप्प हो जाय। जिसके लिए हमारा ऐसा निरन्तर ही प्रयास होता रहेगा।

महापुरुषों के जीवन एवं कार्य सदैव सभी के लिए कल्याण कारी और प्रेरणा दायक होते हैं। जिससे हमारे जीवन में भी जीवन ज्योति सदैव प्रज्वलित होती रहेगी। सत्य ही कहा है— "परोपकाराय सतां विभूतय:" अर्थात सत्पूरूषों का जीवन सदैव परोपकारार्थ ही होता है। जिनका अपना और अपने लिए कुछ भी नहीं होता! ऐसे महापुरूषों के प्रति हम सदैव कृतज्ञता प्रकट करते हैं। तदनुसार हमारा भी जीवन सदा उनका अनुकरण करता रहे। वह धन्य हैं! मान्य हैं!! एव पूज्य हैं!!!

धन्य जागृति का जिन्होंने किया सवेरा है।
ज्ञान दीपक से मिटाया, असत् का अन्धेरा है॥
मानवता के चरणों में, जीवन सुमन बखेरा है।
उन महापुरूषों को, सदा प्रणाम मेरा है॥

☆

# किस से प्रेम हो ?

प्राय: यह देखा और अनुभव किया गया है कि जिस संस्था के सदस्यों का लक्ष्य एकमात्र अपनी संस्था की सेवा ही हो जाता है। वह भी प्राय: संकीर्णता के दलदल में फंस जाते हैं । उनमें स्वार्थ आ जाता है । और पार्टीबाजी उत्पन्न हो जाती है ।

क्योंकि वह प्राय: इस बात को भूल ही जाते हैं कि जिस संस्था के हम अनुयायी हैं । उसका लक्ष्य एवं उद्देश्य क्या है ? वह संस्था अपने ही लिए है, या जनता के लिए ? इतना ही नहीं ! उनका दृष्टि कोण ही बदल जाता है ।

यह स्पष्ट है कि हमारा किसी संस्था एवं संगठन के साथ सम्बन्ध इसलिए नहीं, कि हम किसी एक संस्था विशेष के लिए ही जीयें, मरें । अपितु कार्य को प्रमुख एवं अनिवार्य साधन समझ कर अथवा इसीलिए भी कि हमारी एक अनुशासित एवं नियन्त्रित सामूहिक शक्ति जन मानस की निष्पक्ष रूप से अधिक से अधिक सेवा कर सके ।

इस तथ्य का प्रत्येक मानव सैनिक के लिए जानना और जनाना अत्यावश्यकीय है । ताकि हमारे अपने निजी जीवन की सार्थकता तथा उपयोगिता का वास्तविक रूप हमारे सम्मुख स्पष्ट रहे ।

पुन: ऐसे व्यक्तियों के सम्मुख निजी कर्त्तव्य और कर्त्तव्य पालन की सूझ भी निरन्तर बनी रहे । क्योंकि उन्होंने अपने लक्ष्य और अपने जीवन रहस्य को भली भान्ति समझ लिया

होता है । अथवा यह कहिये कि हम किसी संस्था विशेष से प्यार नहीं करते, अपितु एकमात्र जनता की पवित्र सेवा से ही प्यार करते हैं।

परन्तु जिस संगठन अथवा संस्था विशेष द्वारा सेवा होती है उससे स्वाभाविक ही प्यार और विशेष सम्बन्ध भी हो जाता है। यही कारण है कि हमारी अपने संगठन के प्रति श्रद्धा व भक्ति हो ही जाती है । क्योंकि जिस वातावरण में रह कर हमारा अपना जीवन बना, तथा हमें जिस संस्था विशेष ने जन सेवा के योग्य बनाया, उससे प्यार क्यों कर न होगा ? अत: स्वत: ही एक घनिष्ठ सम्बन्ध एवं सम्पक बन जाता है ।

ऐसी ही अवस्था में और यही समय होता है कि जब किसी भी संस्था या संगठन विशेष से ज़न साधारण में पार्टीबाजी उत्पन्न हो जाना एक साधारण बात होती है ।

सो इसी से बचने के लिए हमें सवथा अपने लक्ष्य और अपनी विचार धारा का प्रतिक्षण ध्यान रखना ही होगा । और इस बात से सबको सदैव चेतना देकर सचेत करते रहना होगा । ताकि लक्ष्य से (ध्येय से) ही प्यार हो, न कि साधन से ।

क्योंकि जीवन लक्ष्य के लिए ही है न कि साधनों के लिए । किन्तु किसी व्यक्ति या समष्टि के द्वारा किये गये उपकार को भूलना भी कृतघ्नता है । जो सब से बड़ा पाप है ।

अत: उसके प्रति सद् भावना और सर्व कारेण कृतज्ञता की भावना रखते हुए भी अपने लक्ष्य और आदर्श को प्रतिक्षण आगे ही रखना होगा !

क्योंकि अन्यान्य सम्प्रदायों, पार्टियों, संगठनों और संस्थाओं में परस्पर विरोधी भावना होती है और संकीर्णता की भावना एवं प्रवृति बनी रहती है ।

जबकि मानव-समाज से इन्हीं दोषों और पारस्परिक दुर्भावनाओं को सर्वत: निकालकर उन सभी में परस्पर सद्-भावना उत्पन्न करनी है।

परन्तु प्राय: लोग यही भयानक गलती करते हैं, जिस गलती का परिणाम उन की सन्तति को भी सदियों तक भोगना पड़ता है।

पुन: हमने जहां समस्त संसार के राष्ट्रों एवं समस्त मानव-समाज में ही समता, एकता, सम्भाव एवं भ्रातृत्व की परस्पर विशुद्ध भावना उत्पन्न करनी है। वहां सर्व प्रथम उन्हीं दोषों को जो मनुष्य से मनुष्य में अन्तर भेद उत्पन्न करने वाले हैं, उनके मन और मस्तिष्क से सवथा निकालकर जनता में सहृदयता, एक विचार, एक लक्ष्य की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करना है। ताकि मनुष्य मनुष्यता के नाते परस्पर मिल बैठ कर अपने पारस्परिक सब सम्बन्धों को दृढ़ कर अपनी समस्याओं का समाधान भी निरन्तर कर सकें। इसके लिए हमें स्वयं उन सभी दोषों से बचना है, और उनसे सदैव ऊपर उठना है ! क्योंकि देश और देश की जनता तथा मानव-मसाज एक संस्था की अपेक्षा बहुत बड़ी वस्तु है।

अत: हमारा प्यार देश से, देश की जनता से तथा इससे आगे बढ़कर मानव-समाज के प्रति हो ा चाहिये। न कि किसी पार्टी व संस्था से !

यदि हो सके तो मनुष्य को सभी सीमाओं से ऊपर उठ कर और आगे बढ़ कर प्रभु की अनन्त सृष्टि के मनुष्य मात्र तथा प्राणी मात्र की सेवा और प्यार सीखना तथा करना चाहिये।

वास्तव में ऐसे ही व्यक्ति महापुरुष और महात्मा कहलाने योग्य होते हैं। उनके सम्मुख सारी सृष्टि ही अपना परिवार होता है। जो प्रभु की सारी सृष्टि को ही अपना घर समझते,

और उसके प्यार द्वारा अपना बहुत ऊंचा कर्त्तव्य पालन कर पाते हैं ।

क्योंकि देश-भक्ति कोई साधारण बात नहीं ! अपितु मानव मात्र की भक्ति तो साक्षात् प्रभु भक्ति ही है । जैसे एक कवि कहता है —

यही है इबादत, और यही दीनो इमां ।
कि काम आये दुनियां में, सन्सान के इन्सां ॥

फिर सच्चे, अच्छे और ऊंचे महान व्यक्तियों का दृष्टिकोण एवं भावना निरन्तर यही रहती है —

LIVE FOR HUMANITY, DIE FOR HUMANITY,
HUMANITY IS GOD, GOD IS HUMANITY
DO NOT FORGET HUMANITY.

जिससे उनका मानवता के प्रति एक उच्च विश्वास और हृदय की आस्था स्पष्ट होती है । इन उदाहरणों द्वारा प्रभु के प्रेम का पात्र बनने के लिए उसकी सन्तति से प्यार करना आवश्यक है । जो प्रभु के बन्दों का प्यारा है, उनकी सेवा करता या उनके सुख दुःख में काम आता है, वही वास्तव में प्रभु का सच्चा प्यारा है । इसीलिए तो हमें "श्रद्धामयी-मानवता" प्यारी है । जिसके लिए मैं निरन्तर यही सोचा करता हूं —

मानवता का सन्देश लिए, पर्यटन करूं मैं कैसे घर-घर ।
मैं स्वयं ही यहां फंस बैठा, कैसे पाऊं यह शुभ-अवसर ॥

फिर भी —

जीवन में जीवन भरने को, बहु-युक्ति लड़ाया करता हूं ।
अधिक नहीं ! कुछ तो मानवता का सन्देश सुनाया ही करता हूं ॥

इसीलिए मुझे ध्येय की ओर आगे बढ़ने में ही, सदैव एवं सवतः जीवन-शक्ति एवं सच्ची शान्ति मिलती है ।

★

# आदर्श कार्य–कर्त्ता कौन?

आदर्श कार्य-कर्त्ता वही है,जो सब प्रकार के कुपथ्य से बच-कर सर्वथा पथ्य से रहे। स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन, स्वस्थ बुद्धि तथा आत्मा की पवित्रता से निजी जीवन में पूर्णता अपनाता हुआ, निर्मित जीवन, अनुशासन बद्ध, परिषद् के सभी नियमों का पालन कर्त्ता, मधुर भाषी, समय को पहचानने वाला, जन सम्पर्क में चतुर, गम्भीरता से निजी, मान अपमान हानि लाभ को न देख, एकमात्र ध्येय के प्रति ही जीवन समर्पित करता है। ऐसा व्यक्ति जनता में आकर्षण रखता है।

जिसमें जनता को केन्द्रित करने एवं पथ-प्रदर्शक बनने की शक्ति भी विद्यमान है। वास्तव में समाज हित के लिए ऐसे व्यक्ति ही बलिदान दे सकते हैं!

क्योंकि उन्हें सांसारिक सुख सम्पत्ति, भोग विलास, लोभ प्रलोभन आदि आर्कषित नहीं कर सकते। वास्तव में ऐसे ही व्यक्ति वचन के धनी होते हैं। जिनमें जमाने को बदलने की भर-पूर शक्ति भी होती है। वह धन्य हैं!

अतः प्रत्येक मानव-सैनिक के लिए ऐसे व्यक्तियों का जीवन स्वयं एक उदाहरण रूप है। जिनका जीवन सदा प्रत्येक के लिए अनुकरणीय और गर्व की बात है।

फिर भी इतना अवश्य ही विचारने योग्य है! कि सिद्धान्ततः हम सिद्धान्त को ही आदर्श मानते हैं। व्यक्ति को नहीं। क्योंकि व्यक्ति तो स्वयं उन आदर्श-सिद्धान्तों को मानने एवं आचरण में लाने के कारण ही आदर्श बन पाया है। ऐसे मन्तव्य से, हमें

सिद्धान्तों के आचरण करने में बल मिलता है।

अतः हमें भी उन आदर्श एवं उच्च सिद्धान्तों पर आचरण करने एवं उन सब का परिपालन करने में तत्पर होना है। जिन सिद्धान्तों के आचरण से एक व्यक्ति भी एक आदर्श-व्यक्ति बन जाता है। क्योंकि कोरे सिद्धान्तों से हम सिद्धान्तों को आचरण में लाने को अधिक महत्त्व देते हैं।

इससे यह स्पष्ट है कि हमारे मानव-सैनिक निर्माण एवं उनके वातावरण में आचरण का विशेष महत्त्व है, कोरी बातों का नहीं। क्योंकि हमारे सम्मुख कोई व्यक्तिवाद एवं कोई गुरुडम नहीं है।

अतः यहां सर्वतन्त्र सिद्धान्त को ही आदर्श समझ उसके आचरण में लाने की प्रधानता है। पुनः मानवता ही स्वयं एक सर्वतन्त्र-सिद्धान्त है, जिसे हम मानते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि कोरे सिद्धान्तों से जीवन में गति नहीं आ सकती। वास्तव में गति, प्रगति और सद्गति तो एकमात्र सिद्धान्तों को आचरण में लाने से ही होती है। इसीलिए हमारा मिशन एक आचार-प्रधान मिशन है।

प्रत्येक मानव-सैनिक 'मानवता' के मिशन का प्रचार एवं प्रसार करता हुआ अर्थात् अपने मिशनरी कार्य क्षेत्र में अपने मिशन के कार्य को ही विशेष महत्त्व देता है। जिस कार्य में उसे किसी प्रकार की बाधा या विरोध से न डरना है, न दबना है, और न रुकना ही है। अपितु उसे निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर बड़े चातुर्य एवं गम्भीरता पूर्वक सर्वथा प्रगतिशील रहना है। ऐसे समय में वह किसी प्रकार के आवेश में न आकर उसे अपने

अन्तरात्मा में, उन विरोधियों के प्रति भी निरन्तर सद्भावना ही रखनी है —

जीवन्तु मम शत्रुगणाः सदैव,
येषां प्रसादात् सुविचक्षणोऽहम् ।
यदा यदा मे विकृतिं भजन्ते,
तदा तदा मां प्रतिबोधयन्ति ॥

अर्थात् मेरा विरोध करने वाले, अथवा मेरे प्रति शत्रु-भाव रखने वाले, वह सदैव जीवित रहें । जिनकी कृपा विशेष से मैं सदैव सचेत रहता हूं । मेरे जीवन एवं कर्त्तव्य-कर्म के प्रति, जब २ और ज्यों २ वह मेरा बिगाड़ ( बुरा ) सोचते हैं, त्यों २ वह मुझे जागृत एवं सचेत करते हैं । अर्थात् ऐसा करके वह मेरे आलस्य एवं प्रमाद से मुझे सदा जगाते हैं, बचाते हैं । और कर्त्तव्य के प्रति मुझे सदा जागरूक रखते हैं । ऐसे व्यक्तियों का मैं सदैव हार्दिक-धन्यवाद करता हूं ।

क्योंकि उन द्वारा ऐसा करने से एक मानव-सैनिक एवं मिशनरी में सदैव जागृति एवं चेतना रहती है । उसमें अपने कर्त्तव्य के प्रति कभी भी आलस्य व प्रमाद नहीं आ सकता । ऐसे विरोधी वातावरण से मुझे सदैव चेतना एवं विशेष प्रेरणा मिलती है । बाधा नहीं । क्योंकि वह बाधाओं से जूझना जानता है ।
अतः एक आदर्श कार्य-कर्त्ता ( मिशनरी ) का साहस एवं उसकी भावना —

तोप, तमञ्चे आगे आयें,

छुरियां-भाले चलते पायें ।

सीना खोल बढ़ो तुम आगे !

तुम्हें काल से लड़ना होगा ॥

मानवता की बढ़े भावना,

कष्टों का तुम करो सामना ।

परहित जीना, परहित मरना,

दीन दुःखी की सेवा निशदिन,

सेवक बन सब करना होगा ॥

अतः सदैव अपनी मानव-सैनिक-भावना को निरन्तर जागृत रखते हुए एक मानव-सैनिक एवं कार्य-कर्त्ता ( मिशनरी ) अपने कर्त्तव्य के प्रति सदैव सचेत रहता है। इस प्रकार सच्ची श्रद्धा एवं द्वारा भक्ति सदैव प्रगतिशील रहता है। यही उसका मानव-सैनिकत्व है। क्योंकि एक मानव-सैनिक जिस कार्य को करने की मन में ठान लेता है, पुनः वह अपना पग पिछे न रख सदैव आगे बढ़ता है ।

वह तो कमान से निकले तीर की भान्ति सीधा अपने लक्ष्य को बीन्धता है। वह यह जानता है कि मेरा मार्ग, सत्य का मार्ग है। पुनः सत्य का मार्ग ही भगवान का मार्ग है । इसलिए चाहे जो हो ! मानव-सैनिक मानवता का अग्र-दूत है ।

अतः प्रत्येक मानव-सैनिक एवं कार्य-कर्त्ता के लिए "मानवता" की सर्वोच्च भावना को उत्पन्न करने, उसकी विचार-

धारा से ओत-प्रोत होने, तथा स्वयं मानवता के विचार-आचार और व्यवहार की सर्व शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने के लिए परिषद्, शाखा, शिविर, इकट्ठ, बैठक, गोष्ठी, सम्मेलन एवं सत्संग आदि का कार्य-क्रम, उसका वातवरण, क्रियात्मक रूप से उसके जीवन को ढालने का एकमात्र उपयोगी क्षेत्र है।

जिसमें नियमतः भाग लेने से जीवन में एक महान परिवर्त्तन आता है। यह एक अनुभव-सिद्ध बात है। अतः इस संगठन के बातावरण का एक चमत्कारिक प्रभाव होता देखा गया है। जितना २ जिसने भाग लिया ! उतना ही उसे विशेष लाभ हुआ।

जिसके लिए आज सहस्रों ही युवकों का अपना निर्मित-जीवन तथा व्यक्तित्व स्वतः प्रमाण है।

★

# शक्ति, भक्ति, ज्ञान और कर्म में से किसे प्रधान मानें ?

प्राय: देखा गया है कि अनेकों संस्थाएँ एवं संगठन जो किसी एक ही को प्रधान मानती हैं। कोई ज्ञान को प्रधान, तो कोई कर्म को प्रधान, कोई भक्ति को प्रधान, तो कोई शक्ति की पूजा करती देखी गई है।

परन्तु इस संगठन ने यह भली भान्ति निश्चय किया है, कि बिना ज्ञान के कर्म अन्धा है। और बिना कर्म के ज्ञान भी लंगड़ा है, और अधूरा है।

इसी प्रकार केवल शक्ति तो एकमात्र पापाचार का कारण बनती है। और भक्ति भी बिना शक्ति के नि:शक्त रहती है। अत: शक्ति का सदुपयोग करने के लिए आस्तिक भावना (आध्यात्मिकता) अथवा भक्ति भी एक आवश्यक अंग हैं। अत: ज्ञानपूर्वक कर्म करते हुए भक्ति योग के साथ शक्ति का सञ्चय करके इन चारों का ही समन्वय किया है। इससे जहां ज्ञान पूर्ण तथा पवित्रता की पुट से युक्त होगा, वहां साथ साथ कर्म भी पूर्ण तथा शुद्ध होगा। यही शक्ति के साथ भक्ति के योग का फल है।

यही कारण है कि जो त्रुटियां अन्य किसी भी संस्था या संगठन से होती हैं वह हम न दोहरायें। इसीलिए परिषद् की सदस्यता से लेकर बड़े से बड़े कार्यकर्त्ता तक शुद्धाचार विचार के साथ साथ ज्ञानपूर्वक मर्म करते हुए भक्ति से युक्त शक्ति को विशेषता देते हैं।

इससे एक व्यक्ति (साधक) का व्यक्तिगत जीवन जहां चोटी का होगा, वहां उसके निजी जीवन की सार्थकता भी विशेष होगी। पुन: ऐसेही व्यक्ति मानवताका विशुद्ध वातावरण भी बना सकतेहैं।

# उद्बोधन !

★ १ ★

आस्तिकता— संयुक्त मानवता का विचार, आचार और व्यवहार जन-जन में प्रसार ही हमारा ध्येय है। इस ध्येय की पूर्ति हेतु, निम्न चार महान साधन हैं। जो मानव-सैनिक शब्द में ओत-प्रोत हैं। वह जीवन में धारण करने हैं। यथा —

१ मानवता को जीवन में अपना विचार,-आचार और व्यवहार में सदाचारी बनना।

२ आलस्य एवं प्रमाद रहित हो निरन्तर प्रगति शील होना।

३ निजी जीवन एवं कार्य क्षेत्र में नियन्त्रण से रहना।

४ स्वयं अपने प्रति, मानव-समाज एवं प्राणी मात्र के प्रति कर्त्तव्य पालक होना।

★ २ ★

उपरोक्त व्यक्ति समूह जो जगत् में मानवता के मिशन को लेकर अग्रसर हुआ है उसी का नाम ' मानव कल्याण परिषद्" है। वास्तव में मानवता ही जो यथार्थतः ईश्वरीय कार्य है। जो आज के युग में प्रत्येक मानव-मात्र का मिशन बनना चाहिये।

क्योंकि जब तक मनुष्य स्वयं इस उच्च कार्य को ईश्वरीय कार्य न समझेगें। इस पुण्य मय कार्य को स्वयं निजी जीवन में न सीचेंगे। और इसे कार्य रूप में परिणत करना पुण्य न जानेंगे तथा अपने जीवन में मानवता के गुण अपना इस महान कार्य का बीड़ा स्वयं अपने सिर पर न लेंगे। तब तक इसका होना नितान्त कठिन है।

अतः विश्व के सभी देश देशान्तरों में परिषद् के विशेष—'मानव-निर्माण मन्दिर' एवं 'मानव-कल्याण केन्द्र' स्थापित करने होंगे। जहां मानवता के सच्चे आदर्श मिशनरी ठोस रूप में तैयार किए जायेंगे। और वही स्थान जन मानस के कल्याणार्थ नानाविध योजनाओं द्वारा वास्तव में 'जन कल्याण केन्द्र' सिद्ध होंगे। जिसके लिए ईश्वरीय आदेश है। "जनया दैव्यं जनम्" हे मानव! दीव्य जीवन वाले जनों का निर्माण करो। और सर्वत्र ऐसे साधन रचो। जिससे जन-कल्याण हो।

★ ३ ★

फिर आज्ञा है। "शिवो भव प्रजाभ्यः" हे मानव! तू इस सृष्टि के प्राणी मात्र जो मेरी प्रजा है। तू इसे सब प्रकार सुख पहुंचा। और किसी को कभी भी कष्ट न दे। क्योंकि कष्ट देना आसुरीपन है, और सुख पहुंचाना दैवीपन है। यह मानव शरीर किसी को कष्ट देने के लिए नहीं। अपितु सबको सुख पहुंचाने के लिए मिला है। यही इसकी उपयोगिता है।

फिर तू स्वयं मानव है। तेरे नाम (मानव-सैनिक) में तेरा ध्येय तेरे रोम २ में सञ्चारित है। इसीलिए तत्काल सचेत हो! और सारी प्रजा के लिए शिव बन। और सब का कल्याण कर।

★ ४ ★

इस संगठन का प्रत्येक व्यक्ति यह भली भान्ति समझ गया है कि जिस समष्टि अथवा मानव-समाज के निर्माण का मैं दावेदार बनता हूँ। उसका आरम्भ तो पूर्व मेरे अपने जीवन से ही होगा। यदि मैं स्वयं अपने अन्तःकरण से बदल गया हूँ। (निर्मित हो गया हूं) तो पुनः समाज और सभी राष्ट्र स्वयं बदल जायेंगे,

अथवा बदले जा सकेंगे । अन्यथा नहीं । क्योंकि जिस दीपक के अन्दर स्वय प्रकाश साधन (तेल बत्ती आदि) नहीं । ऐसा दीपक क्या स्वयं प्रकाशमान होगा ? और क्या वह अन्य को ज्योति दे सकेगा ? कदापि नहीं ।

जिसके लिए हमें स्वयं पहले अपने जीवन में महान क्रान्ति करनी होगी । तदन्तर ही सभी प्रकार की क्रान्तियां उत्पन्न हो सकेंगी । तब होगा एक जगत् व्यापी महान परिवर्त्तन । जिसके उपरान्त हो समस्त संसार से आतंक सर्वथा समाप्त होकर एक मात्र प्रभाव ही जीवित रह सकेगा ।

★ ५ ★

यह संगठन आचार प्रधान संगठन है न कि कोण सिद्धान्त वादी । जिसके प्रत्येक सदस्य को इस महान कार्य के लिए स्वयं अपने जीवन की पूर्ण तैयारी करनी है । क्योंकि जिस समाज के जन साधारण की सेवा के लिए हम तत्पर हुए हैं उस समाज के जन साधारण के जीवन स्तर से क्षेत्र में सेवाथ अग्रसर होने वालों का कुछ विशेष जीवन स्तर होगा, तभी वह सेवा कार्य क्षेत्र में विशेष प्रभावी सिद्ध हो सकेगा । अन्यथा नहीं ।

इसके लिए जहां एक सदस्य स्वयं अपने जीवन का निर्माण करता है । वहां उसे इस योग्य भी बनना है कि वह जन मानस की सेवा के योग्य सिद्ध हो सके । अतः अधूरे जीवन से क्षेत्र में न उतरो !

इतना ही नही । प्रत्येक सदस्य को सर्व सेवार्थ कार्यों के लिए सदैव तत्पर रहना होगा । तभी सेवा क्षेत्रों में विशेष उत्साह एवं आकर्षण उत्पन्न हो सकेगा । इस प्रकार प्रत्येक सदस्य प्रत्येक के

लिए स्वयं एक उदाहरण सिद्ध होगा, और सभी के लिए प्रेरणा स्रोत बन सकेगा।

★ ६ ★

प्रत्येक सदस्य को आत्म निर्माण के साथ २ स्वावलम्बन एवं आत्म निर्भरता के लिए भी अग्रसर होना आवश्यक है। क्योंकि जनता पर भार बन, जनता की सेवा में भाग लेना इतना महत्व एवं प्रभावशाली नहीं। जितना कि स्वावलम्बी होकर जन सेवा में भाग लेना है। यथार्थ में प्रत्येक सदस्य लोक-सेवा के लिए इस प्रकार तैयार हो जाय तो इस महान कार्य में जहां कोई बाधा न पड़ेगी, वहां इस प्रकार प्रत्येक सदस्य मिशन के लिए महान चिट्टान सिद्ध हो सकेगा। और वह मिशन के लिए एक उच्च आशा स्तम्भ सिद्ध होगा।

★ ७ ★

हमारी विचार-धारा अनुसार 'मानव सैनिकत्व' की जांच उसके क्रियात्मक रूप देने में ही है इस प्रकार 'परिषद्' की प्रगति मानव-सैनिक के निर्मित जीवन पर ही आधारित है। पुनः 'परिषद्' की सफलता तभी है, जबकि मानव-सैनिक सफल है।

अर्थात मानव-सैनिक आस्तिक भावना द्वारा विकसित मानवता को जीवन में ढालता है। तभी 'परिषद्' अपने ध्येय में सफल है। क्योंकि आन्तरिक जगत् निर्माण से ही बाह्य जगत् बनेगा। इस सिद्धान्त का यह संगठन अनुयायी है।

★ ८ ★

वास्तव में मानवता-मिशन का मिशनरी (प्रचारक) भी वही हो सकता है, जिसने कि अपने जीवन के अणु २ में इसे सञ्चारित किया हुआ है। किन्तु इस पर आचरण करना एक टेढ़ी खीर है।

कोई सरल कार्य नहीं ।

कारण कि व्यक्ति के आन्तरिक जगत में देवासुर संग्राम हर समय चलता ही रहता है । जिसमें कई बार वातावरण के प्रभाव से अथवा पिछले जन्म के कुसंस्कारों द्वारा सात्विक भावनाओं की पराजय भी हो जाती है ।

जीव के जीवन में कुविचार पनपते हैं । तब मानवता डग-मगाने लगती है । फिर मानवता का जीवन में उत्कर्ष कैसे ? उन पालित आदर्शों का क्रियात्मक रूप कैसे ? ऐसे विचार प्रायः आते ही हैं, तब जीव करे तो क्या करे ?

ऐसे समय में उसे इस सांसारिक वातावरण से टक्कर लेने के लिए अधिक सञ्चित शक्ति चाहिये थी ? जो समय रहते नहीं की । इसीलिए मानव-सैनिक का जीवन संघर्ष-मय कहा है । बाढ़ में बहने की अपेक्षा अपनी स्थिति पर स्थिर रहना अत्यधिक कठिन है । इसलिए उसे ऐसे अवसरों के लिए निरन्तर अपने जीवन को दृढ़ से दृढ़तर बनाना होगा !

★ ६ ★

मानवता पर आचरण करने से आचरण करवाने का भार लेना तो और भी कठिन है ।

अतः इसे क्रियात्मक-रूप बाह्य-साधनों द्वारा नहीं दिया जा सकेगा । क्योंकि मानवता किसी पर ठोंसी नहीं जा सकती । अपितु हृदय द्वारा ही ग्रहण की जा सकती है ।

हृदय को आकर्षित करने का सामर्थ्य उसी में है, जिसने कि जीवन में अपनी दैवी-शक्तियों को विकसित किया हो ?

जरा शक्ति कम हुई नहीं, कि अपना सा मुंह लेकर घर जा बैठेंगे ! इसीलिए प्रत्येक क्षण सचेत रहना होगा !

★ १० ★

यह लिखना अनुचित न होगा कि जीव जीवन के उन्हीं क्षणों में वास्तविक-मानवता का सञ्चार कर सकेगा ! जबकि उसके आन्तरिक-जगत् में बिल्कुल मानवी-शक्तियों का संचार होगा।

जो कि हर समय उसी मात्रा में स्थायी रूप से बड़ी साधना व तप से रह सकती है। माना कि यह कार्य कठिन है, परन्तु हमें उसकी सिद्धियों के लिए अनुपम साधन भी दिया गया है।

यह जिम्मेदारी हमारे पर है, कि क्या हम उससे जानबूझ कर भी लाभ उठाते हैं या नहीं ? वह साधन है एकमात्र अमूल्य-रत्न मानव-जीवन ! इसी द्वारा इस निरस संसार को, हमें सरस बनाना होगा ?

इस वर्त्तमान अशान्ति की प्रज्वलित अग्नि को शान्त कर एक अद्भुत् ( अनोखा ) वातावरण बनाना होगा ! और जगत् की चिर अभिलाषा को पूर्ण करते हुए प्रतिक्षण आगे बढ़ना होगा ! यह सभी तभी हो सकेगा, जबकि जीवन-शक्ति विकसित हो ? कई बार हम स्वयं अपनी शक्ति का अनुमान भी नहीं लगाते ! इसलिए हम कुछ असमञ्जस में पड़े रहते हैं।

★ ११ ★

तुममें से हर एक में भस्माच्छादित-अग्नि की तरह एक अद्भुत्-शक्ति निहित है। साधना द्वारा वह सब भस्म दूर हो

जायेगी। ओर अन्तर का देवत्व करोड़ों-सूर्यों के प्रकाश से प्रकाशित हो कर समय पर मनुष्य समाज को मुग्ध कर देगा !

( सुभाष चन्द्र बोस )

अतः प्रत्येक अपनी २ शक्तियों को विकसित कर इस महान कार्य की ओर केन्द्रित करना होगा ! यह शक्ति अनुरूप वातावरण द्वारा ही स्थिर रह सकेगी । इसके लिए इस सांसारिक वातावरण से बचने के लिए एक नये वातावरण का निर्माण करना होगा ? जिसमें कि हम अपनी मानवीय-शक्तियों के विकास द्वारा, जिनमें महान शक्ति छिपी हुई है संसार को प्रवाहित करते हुए एक नई दुनियां का निर्माण करें। इसके प्रभाव से समस्त मानव-समाज का भी भला हो सकेगा ।

★ १२ ★

यह सब मान्य तथ्य है कि वही व्यक्ति अपनी जुम्मेदारी को समझ सकता है जिसका निर्धारित उद्देश्य एवं कार्य में पूर्ण विश्वास एवं श्रद्धा हो, जबकि इन गुणों का (पूर्ण विश्वास एवं श्रद्धा का) समावेश व्यक्ति में होता है, तभी उसमें अपने साथियों के साथ भ्रातृत्व जागृत होता है ।

इस प्रकार एक संगठित बल अपने पथ पर बढ़ता चलता है चाहे कितनी ही विपद एवं बाधाएँ क्यों न आ जायें। वह तो अपने मिशन में रंगे हुए मस्ताने तथा दीवाने ही होते हैं।

★ १३ ★

हमारे मन में अपने मिशन एवं संगठन के प्रति कोई भी आशंका न हो । तथा पुनः स्वतन्त्र भावना द्वारा 'परिषद्' तत्व से परिचित हो । इसी से मानवता का साम्राज्य जड़ पकड़ने लगेगा ।

★ १४ ★

जो लोग मानवता के उद्धार के लिए प्रतिज्ञा-बद्ध हों ? आत्म-समर्पण कर चुके हों ? उन लोगों में प्रबल-भ्रातृत्व, कठोर-उद्यम, लोहे के समान दृढ़ता और प्रज्वलित अग्नि के समान तेज का संचार होना आवश्यक है।

( अरविन्द घोष )

यह निश्चित है कि इसी शक्ति से हमारा बिखरा हुआ बल शीघ्र संगठित होगा ? और हम पुनः दृढ़ बन सकेंगे ?

★ १५ ★

ईश्वर ने आदेश दिया है — "उप प्रयन्तु नरो अग्नि-रूपाः" अर्थात् हे पुरुषो ! इस संसार में अग्नि-सदृश तेज, पथ-प्रदर्शक प्रकाश, दोषनिवारण-शक्ति एवं पवित्रता आदि गुणों को धारण कर कर्त्तव्य के प्रति अग्रसर हों। हम इसी भाव को जन-साधारण के लिए प्रेरणा रूप में इस प्रकार प्रगट करते हैं ? " आग बनो ! और आग लगा दो ! "

★ १६ ★

महापुरुषों एवं उद्धारकों के मनन करने पर हृदय 'मानव-कल्याण परिषद्' की विचार धारा के भविष्य के सम्बन्ध में बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है, पुनः होवे भी क्यों न ?

आज संसार अशान्ति से व्याप्त है, वह शान्ति के लिए लालायित है। जिसके लिए साधन, प्रायः अशान्ति के लिए बरते जाते हैं। अतः वास्तविक आन्दोलन तथा मानवता की इस विचार-धारा के प्रचार और प्रसार की आज अत्यन्त आवश्यकता है।

परन्तु इसकाउत्तरदायित्व हम पर है, कि क्या हम इसके लिए व्यवहारिक-बुद्धि प्रयुक्त एवं प्रस्तुत कर आपेक्षित-बलिदान करने के लिए प्रस्तुत हैं ?

इसीलिए तो सब को पहले से ही सचेत कर दिया गया था, कि परिषद्-कार्य जिम्मेदार तथा दृढ़-प्रतिज्ञा वाले व्यक्तियों के लिए है।

## ★ १७ अनुशासन ही शक्ति है ! ★

यदि हम अपने संगठन को एक अद्‌भुत् शक्ति के रूप में देखना चाहते हैं ! तो, हमें इस संगठन का अनुशासन दृढ़ से दृढ़तर एवं कठोर बनाना होगा ?

क्योंकि जितना दृढ़, कड़ा अनुशासन होगा । उतना ही आपका यह मिशनरी कार्य एवं उसका संगठन भी सुदृढ़ होगा । अत: अपने संगठन को दृढ़ बनाने के लिए अनुशासन (नियन्त्रण) को दृढ़ बनाइये ! फिर देखिये ! कि आप अपने संगठन का चमत्कार ! चाहे वह थोड़े से थोड़े ही क्यों न हो ?

पुन: अनुशासन को भी स्वभाविक-रूप दीजिए। ताकि पूर्ण उत्साह, रुचि (चाव), विकास और सर्वोन्नति सम्भव हो ! क्योंकि रुचि से प्रसन्नता एवं आत्मिक-प्रसाद प्राप्त होता है । जिसमें केवल प्रमुख रूप से प्रभाव ही काम करता हो, न कि आतंक ! फिर मानवता जैसे उच्च मिशनरी कार्यों में ध्यान पूर्वक रुचि की ओर विशेष ध्यान दिया जाये! रुचि कैसे उत्पन्न होगी ? यह एक कार्य-कर्ता की योग्यता, बुद्धि, कुशलता एवं उसकी निपुणता पर ही निर्भर है।

★ १८ हमारे अनुशासन का आधार । ★

हमारा अनुशासन किसी स्वार्थ लोभ, भय आदि पर आधारित न होकर केवल कर्त्तव्य पर ही आधारित है। क्योंकि लोभ और भय का अनुशासन किसी भी समय भंग हो सकता है। पुन: कर्त्तव्य के साथ बन्धा अनुशासन बड़ी से बड़ी शक्ति को भी हिला और झुका सकता है। इसलिए यह सब काय कर्त्ताओं का कर्त्तव्य है कि वह अपने संगठन में अनुशासन के स्वरूप को भी यदा कदा देखते रहें।

★ १९ ★

यह स्मरण रहे ! काम भली प्रकार आरम्भ हुआ नहीं, कि सफलता हमारे पीछे भागेगी ! छोटा स दीपक भी कितने अन्धकार को नष्ट कर सकता है ? दीपक भी कभी निराश नहीं होता ! उसे यह भय ही नहीं ? कि अन्धकार हर स्थान पर फैला है। और इस बात का भी उसे ध्यान नहीं, कि उसका अपना आकार कितना छोटा है ?

वह भली भान्ति जानता है कि उसका कर्त्तव्य जनता के हितार्थ अपने को निछावर करना है। क्योंकि जीवन दिये बिना जीवन नहीं मिल सकता ! कवि भी कहता है —

मिटा दे अपनी हस्ती को, अगर कुछ मर्त्तबा चाहे।
कि दाना खाक में मिलकर, गुलो गुलज़ार होता है॥

इसीलिए बिना किसी भय के, हमें अभी से तत्काल मानवता की स्थापनार्थ डट जाना होगा ! क्योंकि जिस समय मनुष्य में अदम्य-शक्ति, उत्साह, कल्पना-शक्ति, त्याग, स्पृहा है। जिस समय मनुष्य नि:स्वार्थ भाव से प्रेम कर सकता है, उसी समय वह

आदर्श के चरणों में आत्म-बलिदान कर सकता है। वह आगे पीछे न देख कर, न सोच कर, भव तरंग में जीवन नौका डुबा ( छोड़ ) देता है।

इसीलिए किशोरावस्था एवं यौवनावस्था ही इस साधना का सर्वोत्तम समय है। क्योंकि साम्य, विकसित फूल से ही देव की पूजा होती हैं।

यही कारण है कि 'परिषद्' बाल तथा युवकों के निर्माण के लिए शिविर, साहित्य-सम्पर्क, शाखा एवं सत्संगों पर विशेष ध्यान देता है। वृक्ष की जड़ से सींचो ! यह कहावत यहीं चरितार्थ होती है।

★ २० ★

कहते हैं — 'मनुष्यत्व-लाभ का एकमात्र उपाय मनुष्यत्व की धाम की राह में आने वाले समस्त रोड़ों को चूर्ण-विचूर्ण करना है।' जिसके लिए हमें प्रति क्षण सचेत रहना होगा ! भय किसी का भी न हो ! केवल असत्य के सिवाय !

अतः अब शक्ति जुटाने में तनिक भी विलम्ब न करना होगा ? जब तक इस क्रान्ति को सफलता प्राप्त न हो।

★ २१ ★

क्योंकि हमारे संगठन का प्राण आदर्श है! फिर आदर्श और मिशन! एकमात्र मानवता! मनुष्य मात्र से मनुष्यता व्यवहार! जो विशेष महत्त्व शाली है! फिर मानवता की संसार में स्थापना हो सकेगी? इस विषय पर अपने विचार स्पष्ट करते हुए कहा:— "मानवता के कल्याण के लिए जगत का आमूल चूल परिवर्त्तन

अपेक्षित है। क्योंकि आज की व्यवस्था का सारा आधार विषाक्त एवं जर्जरीभूत हो गया है।

यह बात सत्य है ! प्रकृति का भी यही नियम है, अपितु हमें तो आधुनिक रंग-ढ़ंग, चाल-ढाल को बिल्कुल बदलना होगा ! यह कार्य देखने को बड़ा भयावह लगता है। वास्तव में उतना नहीं जितना कि हम समझते हैं।

( महात्मा गान्धी )

★ २२ ★

अतः सैनिक-साथियो ! हमें मानवता की स्थापना के लिए कुछ सूझ-बूझ ( ज्ञान ) और श्रद्धा से, पर इसमें भी विशेषतया आत्मिकता से जितना हो सके, उतनी सम-बुद्धि करके इस मानव-जीवन की सफलता के निमित्त-निष्काम-बुद्धि से मरण-पयन्त कार्य करना होगा !

साथ ही निश्चय करना होगा कि, जिस कार्य को हम हथिया रहे हैं, उसके प्रति हमें पूर्ण विश्वास तथा श्रद्धा है ? क्या हम इस कार्य के लिए आवश्यक प्रयत्न तथा बलिदान करने को प्रस्तुत हैं? क्या इस संसार के प्रवाह को, जो हमें अशान्ति की ओर लिए जा रहा है, दूसरी ओर घुमाने के लिए उचित ढंग को जानते हैं ? इस प्रकार सब निश्चय करने पर ही हमें यह अधिकार है कि, इन शब्दों का गान करें —

पर्वत से कह दो नम जाये ! सागर से कह दो थम जाये !
यह एक बनाने दुनियां को, अब उमड़ा है अनुराग चलो !!

प्रश्न ?

सुन्दर-परिवर्त्तन का मार्ग ! पकड़ोगे क्या तुम भी ?
काली-रात में तारे बनकर ! चमकोगे क्या तुम भी ?

★

# परिषद् की विशाल योजना !

( संक्षिप्त-रूप में )

सर्व-प्रथम — "मानव-कल्याण संस्थान एवं साधना-निकेतन" की स्थापना। ( एक बृहद्-महत्वशाली योजना एवं बृहत्कार्य का बृहत्केन्द्रीय स्थान ) ।

यह संस्थान "मानव-कल्याण परिषद्" द्वारा सुनियोजित योजना और कार्यक्रमानुसार विविध प्रकार की सामाजिक-सेवाओं का प्रशिक्षण एवं सर्व जन-सेवा-कार्यों का प्रमुख केन्द्र होगा।

अतः इस संस्थान का सम्पूर्ण प्रबन्ध जितना भी शीघ्र हो सके — होने पर यह भारत भर में सभी प्रकार के सामाजिक सर्व-सेवा-कार्यों एवं सर्वसेवा कार्य प्रशिक्षण आदि के लिए एक आदर्श एवं विशेष महत्त्वपूर्ण केन्द्र होगा।

इस संस्था के अन्तर्गत मुख्यरूप से निम्न कार्य केन्द्रित रूप से सञ्चालित होंगे।

१ — सव व्यवस्थार्थ केन्द्रीय कार्यालय ।

२ — कार्यकर्त्ता प्रमुख प्रशिक्षण केन्द्र ।

३ — मानव कल्याणार्थ सर्वसेवा कार्यों का प्रमुख प्रशिक्षण-केन्द्र ।

४ — आयुर्वैदिक निश्शुल्क चिकित्सालय। (रोग ग्रस्त व्यक्तियों के लिए एक विस्तृत क्षेत्र भी साथ में होगा ) ।

५ — आयुर्वैदिक औषध निर्माण केन्द्र ।

६ — असहाय सहायता सदन (स्त्री पुरुष बालक बालिकाओं के लिए) ।

७ — असहाय, बेरोजगार, निर्धन, मजदूर, पिछड़ावर्ग आदि के लिए विविध प्रकार के छोटे छोटे उद्योग, हस्तकला कौशल प्रशिक्षण केन्द्र ।

८ — मानवता सम्बन्धित विशुद्ध विचारधारा के प्रचार प्रसार हेतु सभी प्रकार का मानव कल्याण साहित्य निर्माण एवं प्रकाशन केन्द्र तथा वितरण आदि की सुव्यवस्था।

९ — मुद्रणालय जिससे समय समय पर पत्र पत्रिका पुस्तक पुस्तिका आदि का प्रकाशन समय पर और सुभीते से हो सकेगा ।

१० — सत्सङ्ग, विचार गोष्ठी, सम्मेलन, सभा आदि के लिए एक विशाल भवन ।

११ — मानवता की विचारधारा के पोषक लेखक, गायक, कवि आदि अनेक भाषाओं के ज्ञाता, विद्वान प्रचार प्रसार आन्दोलनादि के लिए विशेष स्थान ( आवास सहित । जहां से मानवता के मिशनरी तैयार होंगे । ऐसा प्रचार विभाग पृथक होगा ।

१२ — सर्वत्र मानव-सेवा-दलों की स्थापना ( उन का केन्द्रीय स्थान ) ।

१३ — विशेष अतिथि-गृह ( वाटिका सहित ) ।

१४ — कार्य-मुक्त ( रिटायरड ) व्यक्तियों के लिए विशेष स्थान । जहां स्वाध्याय, ध्यान आदि का सर्व सुभीता होगा ।

१५ — केन्द्रीय योग साधना प्रशिक्षण केन्द्र ( जहां योग-शिक्षक तैयार किए जायेंगे) ।

१६ — बृहत्पुस्तकालय एवं वाचनालय ।

१७ — वीर-महिला-संघों की स्थापना। केन्द्रीय-कार्यालय सहित पृथक स्थान ।

१८ — आदर्श गो-सेवा-सदन। ( पृथक विस्तृत क्षेत्र सहित ) ।

१९ — बृहद्-भोजनालय।

२० — ट्युबैल एवं जलाशय।

२१ — सभी कर्मचारियों के लिए पृथक आवास व्यवस्था।

इस महान संस्थान के लिए बिजली, पानी, फोन, स्वरक्षा, यातायात आदि का सुचारु प्रबन्ध होगा।

इन उपरोक्त योजना एवं कार्यों से सम्बन्धित अन्यान्य अनेकों योजनाएँ भी प्रारम्भ की जा सकेंगी । यह सब साधनों पर ही निर्भर होगा, कि हम कितना और क्या कार्य एवं किस प्रकार कर सकेंगे ?

विशेष — इन उपरोक्त सभी योजनाओं एवं कार्य-क्रमों के सम्बन्ध में रूप रेखा सहित विशेष, विस्तृत, स्पष्टीकरण "मानव-कल्याण परिषद्" के भावी कार्य-क्रम में देखिये। जो पृथक पुस्तक रूप में छप रहा है ।

★

# परिषद् के मौलिक-कार्य !

★ आस्तिकता (प्रभु-भक्ति-परायणता की शिक्षा एवं दीक्षा) ।

★ आध्यात्मिकता (जीवन-निर्माण, साधना, उपासना चिन्तन, ध्यान आदि का प्रशिक्षण ) ।

★ मानवता ( मनुष्य मात्र में मानवता का विचार-आचार व्यवहार में संचार ) ।

★ सर्व-एकता ( मनुष्यमात्र में विचार आचार एवं व्यवहारिक एकता ) ।

★ सर्व-सेवा ( मानव मात्र की निष्पक्ष सर्वसेवा ) ।

★ सर्व-प्रेम ( मनुष्य-मात्र में विचार, आचार और व्यवहार में सर्वत्र सभी से प्रेम ) ।

★

# परिषद् की विशेषता !

१. इस संगठन में प्रत्येक मनुष्य के लिए एक विशेष, आकर्षक, महत्वशाली एवं शिक्षा-प्रद बात यह है, कि यहां पारस्परिक व्यवहार में कोई कृत्रिमता नहीं है। अपितु सब में परस्पर हार्दिक विशुद्ध प्रेम और पूर्ण विश्वास के साथ, एक पारिवारिक भ्रातृत्व-भावना एवं सर्व-सुख-दुःख में पूर्ण योग-सहयोगात्मक-भावना जो विशेष रूप से काम करती है ।

जिससे सभी स्वयं एक माला के मणकों की भान्ति एक प्रेम लड़ी में ओत-प्रोत हो जाते हैं, और परस्पर आजीवन ही स्वतः एक गहरा विशुद्ध प्रेम सम्बन्ध बना रहता है ।

जो स्वयं एक विशेषता एवं विशेष महत्ता रखता है । आज के युग में जिसकी सबको और सर्वत्र अत्यन्त ही आवश्यकता है। यही हमारी एक रूपता है।

२. क्योंकि मानवता स्वयं एक सर्वतन्त्र सिद्धान्त है। जो प्रत्येक मनुष्यमात्र के लिए निर्विवाद रूप से मान्य है । इसीलिए 'मानवता' स्वयं महान है। जो हमारा ध्येय है ।

३. फिर इस संगठन में एक व्यक्ति का इतना ऊंचा स्थान है, जैसे गणित में ईकाई का। जैसे सारा गणित एक ईकाई पर खड़ा है ।

अतः जिस संगठन की ईकाई, जितनी २ सच्चरित्र, बल, बुद्धि युक्त, शक्तिशाली, नियन्त्रित एवं कर्त्तव्य परायणता पर निर्भर है। उतनी ही उसकी विशेषता है ।

यही कारण है हि हम ईकाई के निर्माण को मानव-समाज का निर्माण समझते हैं। जिसकी आज के युग में विशेष महत्ता है।

४. चौथी विशेषता हमारी विचार धारा है। जो निष्पक्ष रूप से प्रत्येक को, प्रत्येक प्राणीमात्र के हित-साधना की ओर ले जाती है। यही कारण है कि यहां किसी प्रकार की संकर्णिता साम्प्रदायिकता पार्टीबाजी, जन्म-जात भेद तथा मनुष्य से मनुष्य में अन्तर-भेद पैदा करने वाली कोई भी बात नहीं है। इसीलिए हम मनुष्य मात्र में समानता, एकता और भ्रातृत्व की भावना के संचार को विशेष महत्व देते हैं। हमारे लिए सभी मनुष्य एक हैं। और अपने हैं! पुनः दूसरा पन तो कोई है ही नहीं ?

आज मनुष्य मात्र में अनेक प्रकार की विचार आचार और व्यवहार में भिन्नता होते हुए भी हम सब के प्रति सम-दृष्टि रखते हैं। और निष्पक्ष रूप से सबका हित ही सोचते और करते हैं। और निरन्तर यही यत्न करते हैं कि सभीका विचार आचार और परस्पर का समान व्यवहार हो। इसीलिए यह विचार-धारा प्रत्येक मनुष्य को जीवन-विकास और सर्वोन्नति की ओर अग्रसर करती है, जो एक महान सत्यता पर आधारित है।

५. विश्व में जितने भी संगठन हैं। प्रायः उन सबका आधार भौतिकता अथवा आस्तिकता है। पुनः सभी संगठनों में प्रकृति-वाद को ही प्रमुखता दी जाती है। इसीलिए वह सब कुर्सीवाद और भोगवाद की ओर ही दौड़ते हैं।

किन्तु इस एक अलौकिक और अद्भुत् संगठन में आस्तिकता एवं आत्मोन्नति के साथ अन्य साधनों को भी साथ २ स्थान है। परमात्मा और आत्मा से दूर ले जाने वाली भौतिकता का यहां कोई स्थान ही नहीं है।

अतः यहां जहां शारीरिकोन्नति है, तो वहां आत्मोन्नति भी साथ है। और उसका आधार भी पुनः आस्तिकता है। ताकि एक व्यक्ति मानवता से गिरकर कभी अमानव न बन सके। जो एक महत्व की बात है।

६. यहां केवलमात्र ईच्छाएँ ही काम नहीं करतीं, अपितु एक मात्र कर्त्तव्य भावना ही काम करती है! जिसके लिए हमारे निर्मित एवं नियन्त्रित व्यक्ति अपने कर्त्तव्य के सम्मुख ईच्छाओं को तुच्छ समझते हैं। इसीलिए यह संगठन सर्वत्र कर्त्तव्य को ही प्रमुख एवं सम्मुख रख निरन्तर आगे बढ़ा है। न कि ईच्छाओं के बल पर। क्योंकि इच्छा और कर्त्तव्य में महान अन्तर है। फिर ईच्छाओं की बलि देकर ही तो कर्त्तव्य पथ पर आगे बढ़ सकेंगे? और जगत् में हम कुछ कर सकेंगे! इससे स्पष्ट है कि यहां कर्त्तव्य के लिए ही प्रथम बलिदान की भावना है।

७. फिर यह आचार प्रधान संगठन है। अतः यहां सिद्धान्तों के आचरण में लाने कों विशेषता देते हैं। इसीलिए इस संगठन में सभी व्यक्ति एक उच्च आदर्श एवं क्रियात्मक रुप में उच्च जीवन एवं आचरण को ही विशेष महत्त्व देते हैं।

क्योंकि उच्च एवं पवित्र ध्येय की प्राप्ति उच्च एवं पवित्र साधनों द्वारा ही सम्भव है। यही हमारी आस्था और पूर्ण विश्वास तथा अनुभव भी है

८. पुन: आज के इस दूषित एवं विकृत वातावरण में रहते हुए भी हमारे संगठन के मान्य सदस्य, जन-साधारण में पाये जाने वाले दोष मद्य-मांसादि अन्यान्य नशा सेवन से सर्वथा अछूते हैं। और अपने अपने कार्यों में सर्वथा कुशल, सुयोग्य, विद्वान चरित्रवान और विशेष अनुभवी भी हैं। जिसके कारण वह अपने अपने क्षेत्रों में विशेष प्रभावी और प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। इसी लिए ऐसे महानुभावों का यहां इस संगठन में विशेष महत्त्व है। जो इस सर्वोच्च 'मानवता' मिशन जैसे कार्यों का संचालन एवं संरक्षण करते हुए जन-सेवा के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। यह एक सौभाग्य की बात है। जिससे इस संगठन की विशेष आवश्यकता और विशेषता को आप स्वयं अनुभव करेंगे।

इस प्रकार यहां अन्यान्य कितनी ही विशेषताएँ हैं, जो यहां विस्तार भय से संक्षिप्त रुप में संकेत मात्र ही लिखी गई हैं।

## कार्य में सफलता के सूत्र !

१. "स्थिरो भव" — आप जो भी काम करना चाहते हैं, सबसे पूर्व उसके विषय में अपने विचार स्थिर करो ! क्योंकि बिचारों की स्थिरता के बिना यह जीवन गाड़ी आगे नहीं चल सकती। इसीलिए पहले अपने विचारों को स्थिर करो। डांवां डोल विचार मत रखो। क्योंकि स्थिर विचार ही सब कामों में सफलता की कूंजी है।

२. "आशुर्भव" — कार्य को तत्काल करना आरम्भ कर दो। देर मत करो। न जाने फिर क्या विघ्न आता है। अत: किसी भी शुभ कार्य में देरी नहीं करनी चाहिये। क्योंकि —

३. "क्षिप्र मक्रिय माणस्य कालः पिबति तद्रसम्"— अर्थात् यदि कार्य करने में देर करोगे तो काल (समय) कार्य का सब रस पी जायेगा । इसी प्रकार अपने जीवन में हमारे हजारों ही काम बिगड़ गये ।, कुछ करने ही नहीं पाये । और जिनके बड़े २ विचार थे! जिन्होंने समय पर प्रयत्न नहीं किया, वह सभी सर्वत्र पिछड़ गये ।

४. एक चेतावनी !

"कालो अश्वो वहति सप्त रश्मिः सहस्राक्षो ऽजरो भूरिरेतः । तमारोहन्ति कवयःवि पश्चिताःतस्य चक्राः भुवनानि विश्वाः"।

अर्थात् समय रुपी घोड़ा बड़ी तीव्र-गति से दौड़ रहा है इसलिए आज का काम कल पर मत छोड़ो । ऐसे तीव्र गतिवान घोड़े पर वही सवार होते हैं, जो समय की तीव्र गति का ध्यान और ज्ञान रखते हैं । और सवार होने के लिए सदैव प्रतिक्षण तत्पर रहते हैं ।

जो ऐसे और इतने गतिवान घोड़े पर सवार नहीं हो सकते । उनके विचार या तो मुरझा जाते हैं, या उनके जीवन के साथ ही चले जाते हैं ।

५. "पृथुर्भव!"— कार्य करने में तंग विचार और संकीर्ण-बुद्धि मत बनो! सदैव व्यापक हित (सर्व-हित) की विचार-बुद्धि से कार्य करो । उस व्यापक हित में तुम्हारा भी स्वयं भला हो जाएगा । फिर यह भी स्मरण रखो । अहंकार और स्वार्थ बुद्धि से कभी कार्य मत करो । क्योंकि अहंकार और स्वार्थ-बुद्धि से प्रायः सभी काम बिगड़ जाया करते हैं ।

★

# कार्य–सिद्धि में पांच कारण होते हैं !

( भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी का कथन )

अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा, दैवञ्चात्र कारणम् ॥ गीता ॥

अर्थात् —

१. अधिष्ठानम् — स्थान, जहां कोई पुरुष कार्य करेगा, और जिस क्षेत्र में करेगा ?

२. कर्त्ता — करने वाला, स्थान भी मिले, परन्तु करने वाला ही न हो, तो स्थान क्या करेगा ?

३. करणम् — नाना प्रकार के साधन, स्थान भी मिले, और करने वाला भी ! परन्तु बिना साधनों के वह क्या करेगा ?

४. विविधाश्च पृथक् चेष्टा — नाना प्रयत्न साधन भी मिले, परन्तु करने वाले आलसी और सुस्त पड़े रहें ! कोई प्रयत्न एवं चेष्टा ही न करें ! तो कार्य-सिद्धि कैसे होगी ?

५. दैवम् — जब उस परम सहायक देव की कृपा ही न हो तो ? सभी पहले बने बनाये साधन सब पड़े और धरे रह जाते हैं । और उस परम देव की कृपा के बिना सभी काम बिगड़ जाते हैं ।

अतः उस परम देव के प्रति पूर्ण श्रद्धा हो, और उसकी कृपा हो ? उपरोक्त कथनानुसार जब कार्य-सिद्धि में पांच कारण होते हैं ! मूर्ख मनुष्य अपने स्वयं को ही कर्त्ता मान बैठते हैं। जो पांच कारणों के महत्व को ही नहीं समझ पा रहे ! और अपने आप

को ही कर्त्ता, धर्त्ता समझते हैं। इसलिए सर्व प्रथम अहंकार और स्वार्थ को त्यागो ! तभी सफलता है। कहा भी है —

खुदी जब तलक है, खुदा से जुदा है ।
खुदी मिट गई तो, खुदा ही खुदा है ॥

अतः इन उपरोक्त सफलता के सूत्रों तथा कार्य में सिद्धि के पांच करणों को ध्यान में रखते हुए पुनः —

## परिषद् की सफलता के आधार !

१— प्राणीमात्र के कल्याण का ध्येय तथा सर्वोच्च एवं शुभ आदर्श !

२— सुयोग्य एवं अनुभव-पूर्ण-नेतृत्व !

३— सुदृढ़ अनुशासन एवं निष्काम-सेवा ।

४— निर्मित-जीवन तथा कर्त्तव्य-परायणता ।

५— त्याग-तप से परिपूर्ण एवं ध्येय के प्रति आत्म-समर्पण करने वाले कार्य-कर्त्ता !

६— एक ध्येय एवं एक विचार, आचार और व्यवहार में मन-वचन-कर्म की एकता ।

७— उद्देश्य-पूर्त्ति-हेतु ठोस कार्य-क्रम एवं पूर्ण सुदृढ़-साधन-संरचना ।

८— वर्त्तमान राजनीति एवं सर्व-दलबन्दी तथा साम्प्रदायिकता, सर्व-संकीर्णता-रहित-मानवता की विशुद्ध विचार-धारा ।

अतः इन अष्ट-साधनों को प्रतिक्षण सम्मुख रख सभी सदस्य एवं कार्य-कर्त्ता-गण ! तत्काल अनुशासन-बद्ध और सुसंगठित हों! अपनी सुनियोजित योजना एवं कार्य-क्रमानुसार कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर हों ! और शीघ्र ही एक सुदृढ़ शक्ति बन कार्य क्षेत्र में आगे बढ़ें । और कर्त्तव्य के प्रतिपूर्ण श्रद्धा के साथ प्रत्येक में इतना आत्म-विश्वास हो ! कि "हस्तौ मे कर्म-वीर्यम्" मेरे दोनों हाथों में कर्म-शक्ति है ! अतः मैं स्वतः सर्वत्र सफल हूं ?

## व्यक्ति–गत–शक्ति और सफलता !

सभी दैवी शक्तियों एवं देवताओं की सहायता प्राप्त करनेके लिए व्यक्ति-गत रुप से आप निम्न छः गुणों को धारण करें । जो एक २ गुण अपने २ स्थान पर अपना एक विशेष महत्त्व रखता है ।

उद्यमः साहसं धैर्यं, बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः ।<br>
षडेते यत्र वर्त्तन्ते, तत्र देवाः सहाय कृत् ॥

१. (उद्यमः) आलस्य और प्रमाद रहित पुरुषार्थ । २. (साहसं) सोत्साह कार्य-रत । ३. (धैर्यम) धैर्य गुण युक्त । ४. (बुद्धिः) मेधा बुद्धिमान । ५. (शक्तिः) जन, धन, शरीर, बुद्धि-बल-युक्त ६. (पराक्रमः) जिसके सम्मुख कुछ भी असाध्य न हो । सर्व सामर्थ्य युक्त एवं सर्वत्र सर्व कार्येषु विजयी ।

ऐसे पुरुषों के लिए सभी देवता एवं दैवी शक्तियां भी पूर्ण सहायक होते हैं । इन साधनों से युक्त हो । फिर सर्वत्र सफलता के आप स्वयं स्वामी हैं ।

★

# यह आचार–प्रधान संगठन है !

जो विचार चाहे वह वैयक्तिक हों, अथवा सामाजिक उन विचारों को क्रियात्मक रूप से आचरण में लाना 'आचार' कहाता है ।

बहुत बार "आचारः परमोधर्मः" अथवा "आचारः प्रथमोधर्मः" कहा है । इस प्रकार आचार को धर्म का मुख्य अंग माना गया है । वह भी इसीलिए कि विचार को जीवन में एवं आचरण में लाने को प्रधान माना गया है । अर्थात् जब तक किसी विचार को आचरण ( अमल ) में न लाया जाय, तब तक उस विचार का कोई महत्व ही नहीं! अतः प्रत्येक विचार को आचरण में लाओ! तभी उसका विशेष महत्व है। इसलिए विचार से आचार का विशेष महत्व कहा है

मनु महाराज ने जो धर्म के दश लक्षण बतलाये हैं, वह सभी आचरणीय होने से धर्म हैं अर्थात् मानवता के आचरणीय गुण हैं । योग दर्शन में भी यम-नियमों का पालन बतलाया, वह भी व्यक्ति के लिए आचरण योग्य हैं। क्योंकि यम-नियम मनुष्य के वैयक्तिक अथवा सामाजिक रूप में विशेष उन्नित एवं विकास के कारण हैं । उनका भी आचार के साथ सम्बन्ध है।

आचार एक व्यापक-शब्द है ? आचार्यः शब्द भी आचार से बनता है। 'आचारं ग्राह्यति इति आचार्यः' का अर्थ यही है कि आचार्य का मुख्य कर्त्तव्य अपने शिष्य को आचारवान ( आचरण करने वाला ) अर्थात् प्रत्येक अच्छी बात को जीवन में धारण करने वाला बनाना हैं ।

केवल पुस्तक-विद्या पढ़ाने व परीक्षा पास कराने वाले को आचार्य न कहकर उसे शिक्षक ही कहा गया है। मानव-संस्कृति में आचार्य का इसीलिए विशेष महत्व है। कि वह अपने अमली

जीवन से अपने शिष्य-वर्ग में भी सद्आचरण (सदाचार) की प्रेरणा करता है। अर्थात् जिस कार्य से व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं जगत् का उपकार (कल्याण) हो, वही मनुष्य का कर्त्तव्य-कर्म है। और उसी को आचार धर्म अथवा मानवता कहा गया है। इसके विपरीत सब को अधर्म, अमानवता तथा अनाचार कहना चाहिये।

इसी आधार पर मानवता जो स्वयं मानव मात्र के लिए आचरणीय होने से सब-तन्त्र-सिद्धान्त है। अर्थात् वह सभी के लिए समानता से आचरण में लाने योग्य होने से आचार-प्रधान-धर्म है। इसीलिए यह संगठन आचार प्रधान संगठन है। इस प्रकार हमारा प्रत्येक सदस्य 'मानवता' मिशन की क्रियात्मक रूप से शिक्षा एवं दीक्षा ग्रहण करता है, कि वह सर्व प्रथम स्वयं अपने निजी जीवन में मानवता के गुणों से ओत प्रोत होकर पुनः संसार के मनुष्य मात्र को मानवता के सन्देश प्रचार तथा प्रसार में यत्न शील होता है। जो हमारे मिशन की विशेषता और महत्ता है।

## हमारी समाज–निर्माण–योजना !

(संक्षिप्त रूप में)

समाज-निर्माण के लिए प्रमुख रूप से निम्न छः बातें मौलिक हैं। जो क्रमशः लिखी जाती हैं —

१) मानव-समाज को सुशिक्षित करना।

२) सामाजिक चरित्र-निर्माण (सर्व-कुरीति एवं दोष निवृत्ति)।

३) सर्व-स्वावलम्बी-सेवा (आत्म-निर्भरता के लिए) समाज से बेरोजगारी और वर्त्तमान गरीबी के सर्वथा उन्मूलन हेतु

नाना विध-कला-कौशल और छोटे बड़े उद्योग-धन्धों का प्रशिक्षण एवं चालन। जिससे कोई भी व्यक्ति ( बाल, बूढ़े, अपाहज और रोगियों को छोड़ कर ) आजीविकार्थ काम से खाली-ठाली नहीं रह सकेगा। इससे कोई भी व्यक्ति समाज पर भार ही-न बन सकेगा।

४) पूर्ण स्वस्थ एवं सबल समाज। जिसके लिए बिशाल स्वास्थ्य-केन्द्रों की स्थापना, जहां विविध व्यायाम, प्राणायाम और योग-केन्द्रों का जाल बिछ जायेगा इससे कोई भी व्यक्ति वर्त्तमान की भान्ति अस्वस्थ ही न होगा।

५) आस्तिकता से सनी मानवता की विशुद्ध विचार धारा तथा समावता से पारस्परिक सर्व-योग-सहयोगात्मक-भावना की क्रियात्मक रूप से व्यावहारिक जागृति। इससे पारस्परिक सभी समस्याओं का समाधान हो सकेगा।

६) समानता तथा एकता पूर्ण सुदृढ़ संगठनात्मक शक्ति। — इस प्रकार समाज-निर्माण होने पर यह एक सामाजिक-क्रान्ति का एक चमत्कारिक प्रयोग होगा।

इस प्रकार विश्व की एक महान समस्या का समाधान होगा। जिससे जगत् में कोई भी भूखा और नंगा ही न रहेगा। और जगत् में एक सर्वव्यापी सच्ची स्थायी शान्ति हो सकेगी। इस योजना द्वारा विश्व के कितने ही देश देशान्तरों का उद्धार हो जायेगा। और जगत् व्यापी कितनी ही विकट समस्याओं का स्वतः समाधान हो जायेगा।

नोट— यहां समाज निर्माण का संक्षिप्त रूप है। विस्तृत रूप परिषद् के भावी कार्य-क्रम में देखिये। जो छप रहा है।

★

# एक तत्व की बात !

इस संसार का कर्त्ता धर्त्ता और हर्त्ता एक ही है। बेशक ! उसका नाना प्रकार की जगत् की विभिन्न भाषाओं में नाना प्रकार के नामों द्वारा स्मरण हो। इससे उस कर्त्ता में कोई भिन्नता नहीं आती।

जब हमारा सबका स्रष्टा एक ही है, तो हम सब मानव-मात्र जो उसकी सन्तति हैं। इससे हमारी सब की जाति भी एक से जन्म होने के नाते एक ही है। और वह है एक मात्र मानव-जाति ! वर्त्तमान की शेष सब मनुष्य कल्पित ( जातियां ) गुट-बन्दियां हैं। जिन्हें हम स्वयं बनाते और मानते हैं।

पुन: गुट-बन्दियों के होने से भी यह सब अन्ततः मनुष्य ही तो हैं। इस लिए हम सब मनुष्य-मात्र मानव-जाति से भिन्न नहीं हो सकते।

हम सब मानव-मात्र एक पिता के पुत्र होने के नाते और एक ही मानव जाति में उत्पन्न होने से भी हम सब मनुष्य-मात्र समान हैं। इस प्रकार पुनः हमारा पारस्परिक भ्रातृत्व का एक गहरा सम्बन्ध है। इसलिए हम समान और परस्पर भाई-भाई हैं।

इस प्रकार समस्त संसार भर के मानव-मात्र सभी एक समान और एक हैं। पुन: प्रभु की अनन्त सृष्टि में मानव-मात्र के सब अधिकार भी समान ही हैं जो सर्वत्र मानव जाति के लिए सर्वाधिकार स्वतः स्वरक्षित हैं। इस समस्त सृष्टि में कहीं भी किसी भी मानव को मानव अधिकारों से वञ्चित करना या रखना एक महान अन्याय है। जिसे हम अमानवता का व्यवहार कहते हैं।

अत: मानव को गुट-बन्दियों में बन्द करके उनमें परस्पर अन्तरभेद उत्पन्न करना या रखना. यह एक मानबता से खुली

ग्रौर नग्न खिलवाड़ हैं। जिसे हम नहीं मानते।

फिर हम सब मानव मात्र का धर्म भी एक ही है, ग्रर्थात् जिन गुणों के धारण करने से प्रत्येक मानव शरीरधारी ग्रात्मा की सर्वोन्नति एवं चहुं मुखी विकास होता है। ग्रर्थात मानवीय गुणों का धारण करना मानवता हैं। फिर मातवता ग्रौर धर्म एक ही बात है। भिन्न नहीं। वही धर्म कहलाता है। वही मानवता है। शेष सब मनुष्य २ में ग्रन्तर भेद पैदा करने वाली मनुष्य कल्पित गुट बन्दियां एवं सम्प्रदाय ग्रर्थात मतमतान्तर हैं। जिन्हें हम मानव जाति की सर्वोन्नति एवं विकास में सर्वथा बाधक समझते हैं। वहां इन्हें सर्वत्र मानवता पर एक प्रकार का भयानक घातक प्रहार एवं ग्रमानवता का रूप ही मानते हैं।

क्योंकि साम्प्रदायिक विचार धाराग्रों तथा नाना विध दल-बन्दियों से मानव जाति में भिन्नता का प्रसार एवं प्रचार होता है। जिससे मानव-जाति में दूरी उत्पन्न होती ग्रौर परस्पर की एकता छिन्न भिन्न हो जाती है। पुनः परिणाम स्वरुप इसी प्रकार पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, बैर बिरोध एवं नाना भान्ति से संकीर्णता उत्पन्न होकर पारस्परिक युद्ध तक को प्रोत्साहन मिलताहै। ग्रौर उसका बुरा भला परिणाम ग्राने वाली सन्तति को भी सदियों तक भोगना पड़ता है।

ग्रतः हम सब सम्प्रदायों एवं पार्टीबाजी को मानव जाति में ग्रमानवता का प्रवेश द्वार ही मानते हैं। इससें यह स्पष्ट है कि हम सम्प्रदायों एवं किसी भी पार्टी को नहीं मानते।

वास्तव में जिससे मानव जाति में घृणा दूरी उत्पन्न हो, पुनः जिससे पारस्परिक प्रेम, विश्वास, एकता, समानता एवं परस्पर सुख दुःख में योग सहयोगात्मक भावना तक भी न रहे। उसे भी हम ग्रमानवता का रूप ही मानते हैं।

जब हमारी जाति एक। धर्म एक। तो जिन गुणों के धारण करने एवं जिस विचार धारा से हमारी आत्मा का सर्वतः विकास हो और पवित्र भी हो अर्थात आत्मा का भली भान्ति संस्कार हो जाता हो तो ऐसी स्थिति में मानव मात्र की संस्कृति भी तो एक ही हुई। अतः संस्कृति भी मानव मात्र की एक ही है। चाहे वह कहीं भी उत्पन्न क्यों न हुआ हो। संस्कृति कभी भिन्न २ नहीं हुआ करती। हां, सभ्यता तो सबकी भिन्न ही होती है। यथा भारतीयों का खान पान, रहन सहन, रीति रिवाज आदि सब सभ्यता है। जहां जिस व्यवहार द्वारा मनुष्य अपने सामाजिक समूह में सभ्य कहलाता हैं, उससे भिन्न को तत्स्थानीय व्यक्ति समूह असभ्य कहेगा।

यही हमारी विचार धारा है। जिसके प्रचार व प्रसार के अनन्तर मानव-मात्र में तनिक भी भिन्नता एवं दूरी नहीं रह सकती। अपितु अपनत्व अवश्य होगा। और प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक को अपना समझेगा। यही नवयुग निर्माण होगा। इस विचार धारा की आज के युग में कितनी आवश्यकता है ? मनन शील व्यक्ति स्वयं मनन कर अनुभव करेंगे।

हम सब एक हैं !

एक है संसार सारा, एक उसका धर्म है।  
एक मानव-जाति सबकी, एक सबका कर्म है॥  
सृष्टि कर्त्ता एक ईश्वर, एक उसका ज्ञान है।  
सबका वही माता-पिता है, एकसा ही विधा है॥

इसलिए :—

मन वचन कर्म से, सब मानवता का पालन करें।  
इस प्रकार सार्व भौम रूप में, ऐक्य को धारण करें॥  
द्वीप द्वीपान्तरों के, सब जन एक हों।  
हो शरीरों में ही अन्तर, नेक सब, मन एक हों॥

# अन्तिम निवेदन !

मान्य एवं प्रिय बन्धुओ !

जिस महान एवं महत्व शाली 'मानव मिशन' जो अपना ध्येय है। उसे हम विश्व के जन-मानस के जीवन में संचार करना चाहते हैं। और सर्व सेवा के लिए अपनी सुनियोजित नाना विध योजनाओं को क्रियात्मक रुप भी देना चाहते हैं।

इन सबके लिए जिन साधनों द्वारा हम यह सब करना चाह रहे हैं। सर्व-प्रथम उन सभी साधनों को स्वस्थ, सुदृढ़, कार्य के निमित्त समुचित सक्षम, सर्व सामर्थ्य युक्त एवं बलवान बनाओ। अर्थात स्वयं अपने शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा को सर्व बलों से भरपूर करो। क्योंकि मानव जीवन की गाड़ी इस संसार में इन सब की दुर्बलता के कारण आगे नहीं चल सकेगी।

फिर जिस महान ध्येय को सम्मुख रख आगे बढ़ने का निश्चय किया है। उसके लिए यह सुनिश्चित है कि "बशे बलवतां धर्म" अर्थात 'मानवता' की सर्व प्रकारेण रक्षा एवं सर्व सेवा के लिए उपरोक्त सभी बलों और जो एक मात्र बलवानों पर ही निर्भर है। इतना ही नहीं। साधारण से लेकर किसी भी महान कार्य तक शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के स्वस्थ तथा बलशाली बनने पर ही सब आधारित है। इन्हीं बलों के आधार पर ही हम अपने प्रति और मानव समाज के प्रति कुछ कर्त्तव्य पालन कर सकेंगे।

प्रश्न उठता है? कि इस जगत में महान क्या है? और सुख क्या है? उसका भी स्पष्ट उत्तर यही है कि "योवै भूमा तत्सुखम् बलंवाव भूमा" जो महान है वही सुख है, बल ही सबसे

महान है। जिससे स्पष्ट है कि सर्व सुख का साधन एकमात्र बल ही हैं।

यह ठीक है कि उपरोक्त सभी अपने २ स्थान पर अपना एक विशेष महत्व रखते हैं। फिर भी सबका आधार होने से वर्त्तमान युग में शारीरिक बल ही प्रमुख है। इसलिए स्वयं प्रभु ने जीव को आदेश दिया। "स्वयं बाजी स्तन्वं कल्पयस्व"।

अय, प्रगति शील जीव। तू अपने शरीर को स्वयं सर्व सामर्थ्यवान बना। और इस जीवन गाड़ी को ससम्मान और गौरव से चला। यदि तू ऐसा करेगा तो "महिमा ते अन्येन न सन्नशे" संसार में तेरी महिमा एवं यश (बड़प्पन) को कोई नष्ट नहीं कर सकेगा। कवि कहता है —

न ताकत हो जिस सक्श के बाजुओं में,
उसे नित्य नई मार खानी पड़ेगी।
जो चाहता है दुनियां में ईज्जत से जीना,
उसे बाहु शक्ति बढ़ानी पड़ेगी॥

फिर "शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम" अर्थात 'मानवता' की सर्व प्रकारेण रक्षा एवं सर्व सेवा के लिए बलवान शरीर ही सर्व प्रथम एवं दृढ़ तथा निश्चित साधन है।

अतः मनुष्य में स्वयं अपने बल पर इतना आत्म विश्वास एवं साहस अवश्य ही होना चाहिए। जो आत्म सम्मान और पूर्ण गौरव से जी सके। अपितु दूसरे को भी ससम्मान और गौरव से जीवित रख सके। तभी एक मनुष्य स्वयं को मनुष्य कहलाने का अधिकारीहै। इसीलिए ऐसा बल प्राप्त करो। फिरएक साहसी एवं बल-शाली व्यक्ति जो ललकार कर कह सके — "कृतंमे दक्षिणो हस्ते, जयो मे सव्य आहितः" अर्थात मेरे दायें हाथ में कर्म शक्ति है और बायें हाथ पर विजय रखी है। क्योंकि कर्म हीन आलसी प्रमादी तथा भाग्य के भरोसे जीने वाले हाथ पर हाथ

घर पड़े रहने वाले व्यक्ति समाज और राष्ट्र पर भार मात्र हैं।

इसलिए कर्मशील बन कर ही हम कर्त्तव्य की ओर अग्रसर हो सकते हैं। क्योंकि आत्मविश्वास, आत्मज्ञान, आत्मबल, और आत्मसम्मान यह सब सफलता के दृढ़ सोपान हैं। कमठ व्यक्ति ही कर्म का लाभ उठाते हैं। वास्तव में जय-पराजय, हानि लाभ, सुख-दुःख, मान-अपमान सभी का आधार हमारे अपने कर्म ही हैं। अतः हमारी दृष्टि सदा अपने कर्त्तव्य कर्मों पर रहे।

हम द्वेष भाव का सदा सर्वदा के लिए परित्याग कर एक-मात्र निष्काम भाव से लोक सेवा के प्रति कर्त्तव्य कर्म का दृढ़ व्रत लें। यही कल्याण का मार्ग है। जिस पर चल कर हमें अपने प्रत्येक कार्य में सदैव जय प्राप्त होगी।

संसार में दुर्बल होना और रहना पाप है। क्योंकि वह अत्-याचारियों को अत्याचार के लिए स्वयं अपने निजी स्वरुप से प्रोत्साहन देता और आह्वान करता हैं। इसी आधार पर अत्या-चार करने वाले से अत्याचार सहने वाला दुर्बल और भीरु व्यक्ति अधिक पापी हैं, और विशेष अपराधी है। फिर ऐसे दुर्बल व्यक्ति का कोई भी सहायक नहीं होता। परमात्मा भी उसकी प्रार्थना नहीं सुनता। फिर सहायता करना तो दूर रहा।

अतः सर्व प्रथम दैनिक बल सञ्चय का कार्यक्रम बनाओ। साथ में संगठित बल का भी। फिर कार्य क्षेत्र में आओ। कार्य में सफलता अवश्य मिलेगी।

होगी सफलता क्यों नहीं, कर्त्तव्य पथ पर डटे रहो।
प्रहार भारी बाधाओं के, सैनिक बनकर के सहो ॥

पुनः इस महान कार्य में किसी भी प्रकार साहस हीनता जो स्वयं मानसिक दुर्बलता की सूचक है। कभी मत आने दो। और नित्य अपने प्रबल प्रयत्न में डटे रहो। इस प्रकार नित्य जीवन में जीवन फूंको। कवि कहता है —

जीवन है मानव जीवन, जीवन में जीवन भर डालूं।
अभिलाषा है प्रबल प्रति पल, जीवन को जीवन में ढालूं ॥

फिर वर्त्तमान के भोगवाद से जो स्वयं सबसे बड़ा रोग है। जिससे सब प्रकार के बलों की क्षीणता होती हैं। वहां कायरता एवं भीरूपन जीवन को सर्वत्र असफल करने वाले आलस्य और प्रमाद की भी उत्पत्ति होती है। जो सब बलों के घातक शत्रु और दुर्बलता पिशाचनी के सहायक हैं। वह सभी कार्यों में निराशा ही उत्पन्न करते हैं। फिर ऐश-परस्ती तो और भी अधिक बढ़ती है।

इसलिए सब दोषों और दुर्गुणों के उत्पादक भोगवाद को किसी प्रकार और कहीं भी न टिकने दो ! क्यों ?

ऐश के जो दास हैं, और अपनी ही मर्जी के हैं।
दर्द क्या उनको प्रजा का, वह तो खुदगर्जी के हैं।

ऐसे लोगों को दुखियों पर दया, सहानुभूति और मानवता के अन्यान्य गुणों से क्या ? अतः हमारा चहुँमुखी बल सञ्चय का कोई भी कार्य क्रम केवलमात्र अपने ही लिए नहीं ! अपितु मानवमात्र के दुःख दर्द को समाप्त करने के लिए है। जो हमारा कर्त्तव्य है।

आज चहुं ओर देखो ! संसार में कितने अनन्त दुःख हैं। कहीं आधिभौतिक, कहीं आधिदैविक और कहीं आध्यात्मिक दुःख। फिर संसार में नाना भांति की बीमारी, बेरोजगारी, गरीबी, सभी अभावों, नाना भांति के अन्यायों और अत्याचारों तक का सर्वत्र बोलबाला हैं। इतना ही नहीं। यहां अन्धे, लंगड़े, लूले, बहरे, गूंगे, पागल, अपाहज लोगों की बेबसी। जब कहीं भी हमें दृष्टिगोचर होती है। जिन्हें देखकर हमारा मन प्लावित हो उठता है तभी ऐसे समय में कुछ इन्सान कहाने वालों को सम्बोधित कर उठते हैं—

ओ इन्सान कहाने वालो ! गरीब दुःखी पे करो नज़र।
जो मुसीबत में पड़े हैं, ज़रा उनकी भी लो खबर।
अरे धनवान तो बन सकेगा, पहले इन्सान तो बनके देख।
दिल में किसी गरीब के, कभी अरमान तो बन के देख।

क्या इस हार्दिक दर्दभरी पुकार को कोई दिलवाला सुनेगा ? परन्तु इन सब का एक ही समाधान है। और वह है स्वयं अपने कर्त्तव्य के प्रति सदैव जागृति, अतुल उत्साह, साहस, आत्म

विश्वास के साथ अनथक बलपूर्ण प्रयास ! ऐसे समय में हम समझते है— यहां हिम्मत हारने और निराशा से यह सब भाग्य की करामात समझ आलस्य और प्रमाद के शिकार होने से काम नहीं चलेगा ? किसी ने कहा है — बाहों से तो बन सकती है कोई बात ! आहों से यह हालात बदलने से रहे" ? इसलिए युग-परिवर्त्तन-क्रान्ति का आह्वान करो ! क्योंकि ऐसी सड़ांध में सड़ने से कुछ करना ही भला ! जिसका परिणाम कुछ इससे अच्छा ही निकलेगा !

नौ जवानो !

विश्व में मचा दो क्रान्ति! क्रान्ति की ही लड़की है शान्ति।
क्रान्ति से दब जाते हैं दुष्ट, क्रान्ति से दुर्बल होते हैं पुष्ट ।।

उपरोक्त सभी जानने और अनुभव करने पर यह स्पष्ट होता है कि यह कितना महान क्षेत्र ! और कितना महान काम ! भला इतना यह सब कुछ देख ! शान्त मन और आंखें मीच कर कैसे बैठा रहा जा सकता है ? पुनः जिसकी छाती में दिल है । और दिल में दर्द की अनुभूति भी है । फिर वह सभी दुर्बल हैं । जो ऐसे दृश्यों को देख, और इन सभी बातों को सुन और जान कर भी अपना मुंह छिपाये बैठे हैं, चुपचाप! क्या यह भी कोई जीवन है?

वास्तव में आज प्रत्येक जन-मानस के प्रसुप्त-हृदय तक यह भावना जागृत करनी और भरनी है । —

धर्म यही है! कर्म यही है! सबकी समता का आधार यही है।
'मानवता' से प्यार करो तुम ! सबके सुखों का सार यही है ॥

यह बड़े खेद की बात है कि आज प्रायः सर्वत्र एवं सभी लोग नाना प्रकार के भोगवाद, कुर्सीवाद, सम्प्रदायवाद और पार्टीवाद के चक्र मेंपड़ सर्व-कल्याण-कारिणी-श्रद्धामयी 'मानवता' के इस सर्वोच्च ध्येय से सर्वथा विमुख हो रहे हैं ! और अपने अमूल्य मानव-जीवन के शुभअवसर को निरर्थक आमोद-प्रमोद में फंस यूं ही व्यर्थ गवां रहे हैं। फिर यह एक समय की बात है ! जो जान बूझ कर सब भूल बैठे हैं !

क्योंकि मनुष्य अपने जीवन में न जाने कितने और क्या २ कार्य-क्रम बनाता है। ऐसा जान पड़ता है, कि जैसे वह समय का स्वयं स्वामी हो ? नित्य नये से नया ताना-बाना बुनता ही रहता है। और सोचता है। : -

**करिष्यामि करिष्यामि करिष्यामीति चिन्तया।**
**मरिष्यामि मरिष्यामि मरिष्यामीति विस्मृतम् ॥**

अर्थात् मैं एक दिन मर जाऊंगा ! मर जाऊंगा ! निश्चय ही यह शरीर नाशवान है। यह सब भूल कर मनुष्य यह करूंगा ! वह करूंगा ! अभी सब कुछ करना शेष पड़ा है ?

एक मात्र यही सोचना रह जाता है। और परलोक जैसी महत्वपूर्ण आवश्यकता जो अधूरी की अधूरी ही रह जाती है। इस लिए चेतो ! जो भी करना है कर डालो ! यह समय फिर नहीं मिलेगा !

गया वक्त फिर हाथ आता नहीं ?
सदा दौर दौरा दिखाता नहीं ?

फिर —

वर्त्तमान जा रहा चला, यह घड़ी बता रही टिक्-टिक् !
कर्म-वीर बढ़ रहा हर घड़ी, निष्क्रिय को धिक्-धिक् !!

इसलिए —

जीवन के अमूल्य समय को, कभी व्यर्थ मत गंवाइये ।
आलस्य और प्रमाद से बच, सदैव कर्त्तव्य-कर्म कमाइये ॥

यह सत्य है ! और सर्वथा निश्चित है ! कि शीघ्र ही समय आयेगा, जबकि जन-मानस जाग उठेगा ! और मानवता की आवश्यकता और वास्तविकता को विशेष रूप से अनुभव करेगा ! पुन: इस महान ध्येय की ओर स्वत: तीव्र-गति से प्रवृत्त होगा। किन्तु हमें किसी भी समय विशेष की प्रतीक्षा न कर एक मात्र अपने ध्येय की ओर ही प्रतिक्षण अग्रसर होते रहना होगा ! य समय का आह्वान है।

जिसके लिए जीवन-त्याग ही आग है। और यही जीवन है! यह वह मार्ग है ? जिसका संसार के सभी भोगों, सुखों, एज्यों एवं उच्च-पदों की अपेक्षा एक बहुत बड़ा उच्च पद एवं स्थान है।

अन्त में मेरा आप सब से यही नम्र-निवेदन है, कि शीघ्र ही उत्तिष्ठत ! जाग्रत ! उठो ! और जागो ! अनन्त काल से गूंज रही इस ईश्वरीय ध्वनि को सुनो ! और अपने मानव-जीवन को सर्व-बलों से आपूरित करो! अकर्मण्यता, निराशा, उत्साह-हीनता आलस्य एवं प्रमाद तथा सर्व भोगवाद से निरन्तर बचो। और अपनी आन्तरिक प्रसुप्त जीवन-शक्ति और भावनाओं को जगाओ। आत्म-विश्वास और दृढ़ संकल्प के साथ अबसमर्पण की भावना से आगे बढो। क्योंकि —

क्या लाभ है उस जिन्दगी का, कुछ काम न किया जो।
मानव तो वही है, औरों के लिए जिया जो ॥

यह पूर्ण विश्वास रखो। सर्व-शुभ-कार्यों में प्रभु स्वयं सर्व-शक्ति प्रदान करते हैं। और अपने सच्चे भक्तों की सब शुभ कामनाऐं भी पूरी करते हैं। यह एक अटल सत्य है।

अतः इस महान एवं पवित्र ध्येय के प्रति अग्रसर होते हुए हम परिषद् के सभी सदस्य सामूहिक रूप में जगत् के मानवमात्र

एवं प्राणीमात्र के कल्याण के लिए अपने विशुद्ध आन्तरिक-हृदय से सर्व शक्तिमान प्रभु से श्रद्धया निरन्तर यही मंगल-कामना करते हैं

**सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः ।**
**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत् ।।**

हे नाथ ! सब सुखी हों ! कोई भी न हो दुखारी ।
सब हों निरोग भगवन् । धन धान्य के भण्डारी ।।
सब भद्र-भाव देखें, सन्मार्ग के पथी हों ।
दुखिया न कोई होवे, सृष्टि में प्राण-धारी ।।

मानवता विजयताम् !

★ ॐ शम् ★

★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★